३

संस्थापक
संरक्षक
सम्पादक

# सिद्धयोग

योगयोगेश्वर [illegible] महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, रंवाई, आगरा

प्रकाशक

# इस अंक में—


| क्रम संख्या लेख | लेखक | पृष्ठ |
| --- | --- | --- |
| १. सुमरते विघ्न मूलके | ............... | १ |
| २. यज्ञ का महत्त्व (विशेष लेख) | योगयोगेश्वर, अनन्त श्री मनमोहन जी महाराज | २ |
| ३. पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् | | ५ |
| ४. पाश्चात्य नारी-पतिव्रता नारी | सु श्री उषा शर्मा बी० ए० | ७ |
| ४, योग के विघ्न एवं उनके उपाय | श्री गिरीशदेव शर्मा | ९ |
| ५. कला फिर भी मानव की भूल ( कविता ) | श्री राघवेन्द्र तिवारी | १२ |
| ६. योगिराज श्री तैलंग स्वामी | डा० विष्णुदत्त शर्मा | १३ |
| ७. माता | श्री कमलेश कुमार कांठ | २२ |
| ८. जाने कब उड़ जाएँ ( कविता ) | प्रो० श्री हरि 'निर्मोही' | २५ |
| ९. राजा भोज का पूर्व जन्म | श्री पूर्णचन्द्र पन्त, शास्त्री | २६ |
| १०. योगी जयकों के उपदेश | आचार्य श्री यशोवर्धन | ३३ |
| ११. ज्ञात नहीं गन्तव्य कहाँ ( कविता ) | श्री पीताम्बर मिश्र | ३६ |
| १२. योगाभ्यास | श्री विक्रमसिंह | ३९ |
| १३. शक्ति साधना में माँ नाम की महिमा | श्री जी० एन० व्यास | ४५ |
| १४. सन्त कबीर की वाणी (कविता) | | ४८ |
| १५. भारतीय संसद में योगचर्चा | टाइटिल | ३ |



संयुक्त सम्पादक
दिव्य
फोन ६६११६८

# सिद्ध योग

वर्ष १, अङ्क ३ — जून १९७६


ध्यातं ध्यायं यदिदं वदनं श्रीगुरु शुद्ध स्वभावम्,
यायी भूतलेषु च विचरतो, मुक्ति प्राप्नोति यथा।
तत्त्वाप्याशावित् मद्गुरुवाक्यात्, योगतत्त्वोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग' ॥

## नमस्ते विश्व मूर्तये

नमो विज्ञानमात्राय परमानन्द मूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्त द्वैत दृष्टये॥
आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्व मूर्तये॥

अर्थात्

आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं। आपकी मूर्ति परमानन्दमयी है। आप अपने स्वरूप भूत आनन्द में ही मग्न और परम शान्त हैं, द्वैत दृष्टि आपको छू तक नहीं सकती। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अपने स्वरूप भूत आनन्द की अनुभूति से ही आपने मायाजनित राग-द्वेष आदि का तिरस्कार कर रखा है। आप सबकी समस्त इन्द्रियों के प्रेरक परम महान् और विराट स्वरूप हैं। मैं आपको नमन करता हूँ।

卐

हमारा विशेष लेख—

# श्रद्धा का महत्व

[ योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ]

भारतीय संस्कृति और भारतीय धर्म शास्त्रों में श्रद्धा की महत्ता निर्विवाद रूप से स्वीकार की गई है। जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने तो बहुत ही स्पष्टता से श्री मद्भगवद्गीता में अपने अभिमत को व्यक्त करते हुए कहा है कि :—

श्रद्धा मयो ऽयं पुरुषो,
यो यत् श्रद्धः स एव सः ।

अर्थात् यह पुरुष श्रद्धामय ही है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वह वैसा ही होता है।

और आगे उन्होंने कहा है कि श्रद्धा सब लोगों में अपने-अपने सत्त्व के अनुरूप अर्थात् प्रकृति या स्वभाव के अनुसार ही होती है।

भगवान् ने श्रद्धा को स्वभावजा बतलाया है। 'श्रद्धात्रय विभाग योग' नामक गीता के सत्रहवें अध्याय में उन्होंने अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहा है :—

त्रिविधा भवति श्रद्धा,
देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव,
तामसी चेति तां शृणु ॥

यानी स्वभावतः प्राणिमात्र की जो श्रद्धा होती है वह सात्त्विकी, राजसी और तामसी (अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार) होती है। तू उसका वर्णन सुन! मनुष्य इसी अपनी-अपनी सात्त्विक, राजसी और तामसी श्रद्धा के अनुसार देवता, यक्ष और राक्षसों के पूजन तथा भजन आदि कर्त्तव्यों के पालनमें प्रवृत्त होते हैं।

मनुष्य पूर्णतः श्रद्धा के अधीन होता है। मन के दृढ़ विश्वास का नाम श्रद्धा है। जैसी जिसकी मनः प्रवृत्ति होती है श्रद्धा उसके क्रिया-कलापों द्वारा उसी रूप में प्रकट होती रहती है। श्रद्धामें बड़ा बल होता है। सात्त्विक श्रद्धा वाले पुरुष ईश्वर, वेद, शास्त्र और गुरुजनों के प्रति श्रद्धावान रहकर अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति करते हैं। जीवन के परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति भी श्रद्धा के बिना सुलभ नहीं होती। 'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं' इस वाक्य के अनुसार ज्ञान या ज्ञान रूप ईश्वर की प्राप्ति श्रद्धावान् पुरुषों को ही

हो जाती है। श्रद्धाविहीन मानव तो अन्त में विनाश की गति को ही प्राप्त होते हैं। योग-दर्शन के रचयिता भगवान पतंजलि ने भी योगियों को भी श्रद्धावान् होने का परामर्श दिया है; क्योंकि श्रद्धा माताके समान योगियों और साधकों की रक्षा करती है। समाधि पाद के २०वें सूत्र में वे लिखते हैं—

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।

अर्थात् दूसरे योगियों को (जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं हैं) छोड़कर—योग, श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, समाधि प्रज्ञा से होता है, इसी से इसे उपाय-प्रत्यय कहा गया है।

आप थोड़ा इस सूत्र की शब्द-योजना पर विचार करें। उपाय-प्रत्यय के हेतु वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञापूर्वक इत्यादि जो उपाय बताये गये हैं उनमें श्रद्धा को सर्व प्रथम स्थान दिया गया है।

भगवान् व्यास देव ने आचार्य पतञ्जलि देव के उपरोक्त सूत्र की व्याख्या करते हुए श्रद्धा की परिभाषा में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं :—

श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः। सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति। तस्य हि श्रद्धानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुप-जायते। समुपजात वीर्यस्य स्मृतिरुप-तिष्ठते। स्मृत्युपस्थाने च चित्त मनाकुलं समाधीयते। समाहित चित्तस्य प्रज्ञा विवेक उपावर्तते। येन यथावद्वस्तु जानाति तदभ्यासात्तद्विषयाच्च वैराग्याद-सम्प्रज्ञातः समाधिर्भवति।

अर्थात् चित्त की प्रसन्नता को श्रद्धा कहते हैं। ऐसी श्रद्धा से युक्त योगी ही इस योग का अधिकारी है। श्रद्धा माता के समान योगी का हित-साधन करके उसकी रक्षा करती है। ऐसी श्रद्धा से परिपूर्ण योगियों को सत्यासत्य के जानने का वीर्य यानी बल या उत्साह पैदा होता है, क्योंकि उत्साहके अनुसार ही साधना में तत्परता आती है। इसके पश्चात् स्मृति, स्मृति के पश्चात् चित्त की सावधानता तथा सावधानता के पश्चात् सत्यासत्य के निर्णय को प्रज्ञा और प्रज्ञा के पश्चात् असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार पतञ्जलिदेव के सूत्र की भगवान व्यास द्वारा की गई व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीर्य, स्मृति, प्रज्ञा आदि सद्गुणों की प्राप्ति का आधार श्रद्धा ही है। श्रद्धा-विहीन व्यक्ति वीर्य, बल, स्मृति किसी भी सद्गुण की प्राप्ति नहीं कर सकता। बिना सद्गुणों के विवेक ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

श्रद्धा और श्रद्धेय का भी अभिन्न सम्बन्ध है। यदि श्रद्धेय के प्रति कामना रहित श्रद्धा

मनुष्य के हृदय में होती है तो धीरे-धीरे श्रद्धेय के सभी गुण श्रद्धावान् में आ जाते हैं। श्रद्धावान् का कभी पतन नहीं हुआ करता। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि श्रद्धावान् साधक की रक्षा श्रद्धा ही मातृवत् किया करती है। किसी भी दशा में वह उसे संकट-ग्रस्त नहीं होने देती है।

ईश्वर का साक्षात्कार भी श्रद्धावान् को ही होता है। हमारे देश के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें श्रद्धा के बल से ही साधकों ने अलौकिक ऐश्वर्य और असाधारण क्षमता प्राप्त की है। भगवान के प्रति अटूट श्रद्धा रखने के कारण ही उन्होंने द्रौपदी को उस समय रक्षा को अपना कर्तव्य बनाया, जबकि कुरु सभा में उसे बलात् वस्त्र-विहीन करने की चेष्टा की जा रही थी।

महाभारत के युद्ध में अर्जुन और उसके भाइयों की विजय भी तभी प्राप्त हुई जबकि अर्जुन ने श्रद्धापूर्ण हृदय से—"करिष्ये वचनम् तव" कहकर विनीत भाव से अपना समर्पण कर दिया। गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य को बाण चलाने की दीक्षा देने से इन्कार कर दिया था लेकिन एकलव्य के हृदय में द्रोणाचार्य के प्रति अद्भुत पूर्व निष्ठा और श्रद्धा थी। उसी श्रद्धा और निष्ठा के बल पर आचार्य के इन्कार कर देने पर भी उसने उनकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर जंगल में बाण चलाने का अभ्यास आरम्भ कर दिया। इस निरन्तर के अभ्यास और अपने हृदय की श्रद्धा के बल पर बाण चलाने की विद्या में वह इतना निपुण हो गया कि अर्जुन भी इस विद्या में निषाद बालक की समता नहीं कर सकता था। यद्यपि गुरु द्रोणाचार्य अर्जुन को स्वयं अपने मुखारविन्द से धनुर्विद्या की शिक्षा दिया करते थे, जबकि एकलव्य ने यह शिक्षा आचार्य की प्रतिमा मात्र बनाकर अपनी श्रद्धा के बल से प्राप्त की थी। इससे भी बढ़ कर अपने गुरु के प्रति श्रद्धा का अपूर्व उदाहरण एकलव्य के जीवन में हमें उस समय मिलता है जबकि गुरु द्वारा गुरु दक्षिणा के रूप में सीधे हाथ का अँगूठा माँगने पर तत्काल उसने काट कर अपने गुरु को समर्पित कर दिया। ऐसा होता है श्रद्धावान् और श्रद्धेय का सम्बन्ध।

हमारे देश में पूज्यों और गुरुजनों के प्रति जन साधारण में श्रद्धा का ऐसा भाव जब तक उदय न होगा तब तक सुख और शान्ति की स्थापना का स्वप्न साकार नहीं हो सकता। हम न केवल योग-पथ के साधकों को बल्कि प्रत्येक उस व्यक्ति को जो अपने लौकिक और पारलौकिक ऐश्वर्यों की प्राप्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने की इच्छा रखते हैं, यह परामर्श देना आवश्यक समझते हैं कि इस पथ पर चलने के लिए श्रद्धा ही उनका सबसे बड़ा सम्बल हो सकता है। ईश्वर और सद्गुरुओं के प्रति यदि वे श्रद्धावान रहेंगे तो दूसरे अनेक सद्गुण जो जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं उनमें स्वतः ही समा सकेंगे।

# पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

योगशास्त्रं पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
यत्स्वयं चादिनाथस्य निर्गतं वदनाम्बुजात् ॥

जो नित्य योगशास्त्र पढ़ते हैं उन्हें और शास्त्रों से क्या प्रयोजन ! योगशास्त्र का अलौकिक प्रत्यक्ष फल मिलता है क्योंकि यह शास्त्र आदिनाथ ( शिवजी ) के मुख कमल से प्रकट हुआ है और अनुभव सिद्ध होने से अति प्रामाणिक है ।

× × ×

भवभयहरं नृणां मुक्तिसोपानसंज्ञकम् ।
गुह्याद्गुह्यतरं गुह्यं गोरक्षेण प्रकाशितम् ॥

योगाभ्यास करने वालों के जन्म-मरणादि भय हरने वाला मुक्ति द्वार में जाने के लिए सोपान ( सीढ़ी ) स्वरूप एवं धर्म अर्थ काम देने वाला गुप्त से भी अति गुप्त यह योग शास्त्र श्री गोरक्षनाथ ने योगियों पर कृपा कर संसार में प्रकट किया ।

× × ×

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत् ।
व्योमविज्ञानमानंदं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः ॥

निर्मल, निश्चल, नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण, महत् ( जिसका परिमाण नहीं किया जाता ऐसे ) व्योम, विज्ञान ( बोध-स्वरूप ) आनन्द ब्रह्म को ब्रह्मविद ( योगी ) जानते हैं ।

× × ×

यदा संक्षीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते ।
यदा समरसत्वं च समाधिः सोऽभिधीयते ॥

मन एवं प्राण को एकत्र करके स्थिर होकर आत्मा की भावना करने वाले योगी की जब प्राणवायु आत्मा में ही लीन होती है, जल तथा सैंधव की सी जीवात्मा परमात्मा की एकता ( अभिन्न स्वरूपता ) होती है, उसी को समाधि कहते हैं ।

एकस्तम्भं नवद्वारं गृहं पञ्चाधिदैवतम् ।
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्ध्यन्ति योगिनः ॥

शरीर स्तम्भरूपी गृह है। इसमें मकान वासनाओं का आश्रय मन है। यही खम्भा रूप होकर समस्त शरीर को थामे रहता है। इस देह के गृह के मुख एक नेत्र दो नासिका दो कर्ण दो गुदा एक लिंग एक ये ९ द्वार हैं तथा पंचभूत ५ देवता हैं। ऐसे शरीररूपी गृह को जो योगाभ्यासी नहीं जानता वह योगसिद्धि कैसे पा सकता है।

× × ×

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः ।
नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥

१ प्राण, २ अपान, ३ समान, ४ उदान, ५ व्यान, ६ नाग, ७ कूर्म, ८ कृकल, ९ देवदत्त, १० धनंजय, ये दस वायु शरीर में हैं।

× × ×

हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुदमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ॥
व्यानो व्यापी शरीरेषु प्रधानाः पञ्च वायवः ।
प्राणाद्याः पंच विख्याता नागाद्याः पंच वायवः ॥

प्राणवायु हृदय में रहकर श्वास बाहर भीतर निकालता तथा अन्न-पानादिकों का परिपाक करता है। १. अपानवायु मूलाधार में मलमूत्र बाहर निकालने का काम करता है। २. समानवायु नाभिमें शरीर को धुरुक अर्थात् यथास्थान रखने का काम करता है ३. उदानवायु कण्ठ में रहकर शरीर की वृद्धि करता है। ४. व्यानवायु सर्व शरीर में लेना, छोड़ना आदि सब कर्म करता है। ५. वायु तो दस हैं, परन्तु इनमें प्रधान पाँच ही हैं जिन योगशास्त्र के मतसे मुख, नासिका, हृदय, नाभिमें कुण्डलिनी के चारों ओर तथा पादांगुष्ठ में सर्वदा प्राणवायु रहता है। १. गुदा, लिंग, ऊरु, जानु, उदर, पेडू, कटि, नाभि इनमें अपान वायु रहता है। २. कर्ण, नेत्र, कण्ठ, नाक, मुख, कपोल, मणिबन्ध में व्यान वायु रहता है। ३. सर्वसंधि तथा पैरों में उदान वायु रहता है। ४. कन्धासन्धि के कलाको लेकर सर्वांग में समान वायु रहता है। ५. इस कारण से प्राणादि पाँच वायु प्रधान हैं। नागादि पाँच वायु का जो धर्म एवं जहाँ में रहकर कर्म करते हैं उन्हें आगे कहेंगे हैं।

—गोरक्ष पद्धति

# पत्नी पांडु-पतिव्रता माद्री

[ सु श्री उमा शर्मा, बी० ए० ]

इस लेख से पूर्वाङ्क में परम तपस्विनी केतकी के महान तप का वर्णन करने का प्रयास मैंने किया था, जिसमें केतकी के तपस्या के बल से देवताओं को भी मृत्युलोक में आ जाना पड़ा। प्रस्तुत लेख में मैं महाभारत काल की एक महान पतिव्रता के पातिव्रत के प्रभाव का वर्णन करने जा रही हूँ।

भारतवर्ष में समय-समय पर महान पतिव्रताओं का जन्म होता रहता है। कहा भी है कि यति और सतियों के आधार पर ही यह पृथ्वी आधारित है। यदि इस पृथ्वी पर यति और सतियों का प्रादुर्भाव न होता रहे तब यह पृथ्वी ठहर नहीं सकती।

महाराजा शल्य की भगिनी अर्थात् बहिन माद्री देवी अत्यन्त रूपवती एवं सुशीला थी। भीष्म पितामह ने महाराज के पास संदेश भेज दिया और उसे स्वीकार करके महाराज शल्य ने अपनी बहिन का विवाह पाण्डु के साथ कर दिया। राजा पाण्डु का इससे पूर्व ही एक विवाह भूमि भोज नरेश की कन्या कुन्ती से हो चुका था। एक दिन पाण्डु ने आखेट करते हुए एक मृग पर बाण चलाकर उसे मार दिया मृग उस समय मृगी से सहवास कर रहा था। मरते समय मृग अचानक ऋषि कुमार के रूप में परिणत हो गया। अब पाण्डु को पता लगा कि उन्होंने ऋषि पुत्र किन्दम को भूल से मार दिया है। पाण्डु को ऋषि पुत्र ने शाप दिया कि "तुमने मृग समझकर भी सहवास के समय मुझे मारने की मूर्खता की है, अतः पत्नी से सहवास करते समय ही तुम्हारी मृत्यु होगी।"

शाप को सुनकर पाण्डु को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने संन्यास लेकर तपस्या करने का निश्चय किया। पाण्डु की दोनों पत्नियों ने प्रार्थना की कि संन्यास न लेकर वानप्रस्थ-आश्रम में रहते हुए ही महाराजा तपस्या करें इस प्रकार उन दोनों को भी उनके सान्निध्य में रहकर तपस्या करने का अवसर मिलेगा। पाण्डु ने इसे स्वीकार कर लिया। सेवकों को उन्होंने अपने वस्त्राभूषण दे दिये और अपनी सब सम्पत्ति तथा राज्य धृतराष्ट्र को देने का आदेश देकर विदा कर दिया। कन्द मूल खाकर ऋषियों के आश्रम में वे तपस्वियों का जीवन व्यतीत करने लगे।

पाण्डु के आदेश देने पर कुन्ती देवी ने

क्रमशः धर्म, वायु और इन्द्र का आह्वाहन किया और उनसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन का जन्म हुआ। माद्री ने भी पति से सन्तान की प्रार्थना की। पाण्डु ने कुन्तीसे अनुरोध किया—

'पृथे! मेरी प्रसन्नता के लिये तुम माद्री को भी सन्तति देदो।'

कुन्ती ने कहा—"बहन! तुम केवल एक बार किसी देवता से पुत्र पा सकती हो अतः भली प्रकार सोचकर उस देवता का ध्यान करो।"

माद्री ने अश्विनी कुमारों का ध्यान किया। कुन्ती के मन्त्र प्रभाव से देवता पधारे और दोनों अश्विनी कुमारों के अंश से माद्री से यमज नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए।

प्रारब्ध को कोई भी टाल नहीं सकता। एक दिन महाराजा पाण्डु वन में घूम रहे थे। अकेली माद्री उनके साथ थी। शाप विस्मृत हो गया। सुरम्य वनश्री देखकर उनका मन संयम से बाहर हो गया। उन्होंने माद्री का आलिंगन किया। पत्नी ने पृथक होने की बहुत चेष्टा की। पतिदेव को बहुत समझाया भी, रोकर प्रार्थना की किन्तु बलवान काम के प्रति इस की उक्ति काम न दे सकी, अन्ततः शाप सफल हो गया। उसी समय पाण्डु का शरीर शाप के अनुसार निष्प्राण होगया। माद्री आर्त स्वर में कुन्ती को पुकार कर कहती है—बहिन! बच्चों को छोड़कर तुरन्त ही अकेली आ जाओ। माद्री के आर्त नाद को सुनकर पुत्रों के साथ कुन्ती दौड़ी आ रही थी। माद्री ने पुकार कर उन्हें संकेत किया। समीप आने पर कुन्ती ने जो कुछ देखा उससे वे व्याकुल हो गयीं।

कुन्ती ने कहा—माद्री! उठो! बच्चों को संभालो, मैं बड़ी पत्नी हूँ महाराज की, अतः अब मेरा कर्तव्य है मैं उनके साथ सती होऊँगी, किन्तु माद्री कहती है—

'बहन! मैं तुमसे छोटी हूँ। मेरा इतना अनुरोध मानो और यह अधिकार अब मुझे ही दो, क्योंकि मैं अनुभवहीन हूँ और दुबली हूँ। संसार में संयमपूर्वक रहते हुए शिशुओं का पालन करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है। मेरी ही आसक्ति के कारण महाराज को शरीर छोड़ना पड़ा है। अतः इस समय उनकी सेवा में मुझे ही शीघ्र उपस्थित होने दो। मेरे बच्चों का पालन भी तुम अपने बच्चों के समान ही करना।'

कुन्ती को माद्री का यह आग्रह स्वीकार करना पड़ा। काष्ठ चयन के बाद चिता निर्मित हुई।

उसी प्रकार पति के शरीर को आलिंगन किये हुए ही माद्री ने अपनी आहुति चितानल में देदी। पाण्डु के साथ माद्री की अस्थियाँ भी ऋषियों ने हस्तिनापुर पहुंचाईं। महाराज धृतराष्ट्र ने विधिपूर्वक बड़े समारोह से दोनों की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की।

संसार में कोई भी पुरुष इस प्रकार का त्याग कर अपनी अर्धांगिनी सती पत्नी के लिए नहीं कर सकता जितना त्याग एक पतिव्रता पत्नी कर सकती है। धन्य है! ऐसी महान् पतिव्रता सतियों को जो अपने पति के इस संसार में न रहने पर इस शरीर को प्राण रहते हुए भी अग्नि को भेंट चढ़ा देती है। धन्य सती! धन्य पतिव्रता!!

पाँचवाँ उपाय—

# योग के विघ्न एवं उनके उपाय

[ श्री गिरीशदेव वर्मा ]

## विशोका वा ज्योतिष्मती ।

अर्थ—अथवा शोक से रहित प्रकाशयुक्त प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन की स्थिरता को बाँधती है ।

भावार्थ—अब बतलाते हैं कि यदि ऐसी प्रकाशयुक्त प्रवृत्ति उत्पन्न करली जाय जो शोक से रहित हो तो मन स्थिर हो जायगा । ऐसी ज्योतिष्मती प्रवृत्ति को उत्पन्न करने के लिए हृदय में ध्यान करना पड़ता है । हृदय का स्थान सारे शरीर में विशेष है । गीता में कहा है कि—

**ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ।**

ईश्वर तथा जीवात्मा का स्थान हृदय में ही है और हृदयाकाश में योगी लोग भगवान का दर्शन करते हैं । विश्व-सार तन्त्र में कहा है कि इस स्थान में उत्पन्न होने वाली अनाहत ध्वनि ही भगवान सदा शिव हैं । त्रिगुणमय ओंकार इसी स्थान में व्यक्त होता है । किसी से पूछिये कि इस काम को करने वाला देवदत्त कौन है तो वह अपनी छाती पर हाथ रखकर ही अपने देवदत्त होने का परिचय देगा । इसके लिए वह कभी मस्तक या टाँगों का स्पर्श नहीं करेगा । इसी तरह किसी आकस्मिक दुर्घटना को सुनकर हमारे हृदय में ही विशेष आघात लगता है । इसका कारण यही है कि इसके अन्दर जीवात्मा दीप-ज्योति के समान विराजमान है ।

कहा जाता है कि आजकल डाक्टर लोग मनुष्य का हृदय बदल कर दूसरा हृदय लगा देते है, तब हृदय की क्या महत्ता रह गई ? किन्तु जिस हृदय की बात योग शास्त्र में आती है वह हृदय स्थूल शरीर का अंग नहीं है । स्थूल शरीर का अंग चाहे कोई भी हो, उसका स्पर्श किया जा सकता है । उसको चीरा-फाड़ा जा सकता है, उसको बदला जा सकता है । स्थूल शरीर का हृदय शरीर रूपी मशीनरी का एक ऐसा पुर्जा है, जो रक्त-संचालन की क्रिया का नियन्त्रण करता है । हम जिस हृदय की बात कर रहे हैं वह स्थूल शरीर का अंग नहीं है, बल्कि सूक्ष्म शरीर का अंग है ।

सूक्ष्म शरीर का हृदय अथवा अनाहत चक्र अरुण वर्ण के बारह पंखड़ियों वाले कमल से बना है। चक्र का यन्त्र धूम्र वर्ण, षट्कोण तथा वायु तत्व का सूचक है। इस चक्र के मध्य में शक्ति त्रिकोण है जिससे विद्युत सा प्रकाश व्याप्त है। वहीं पर ध्यान करने से प्रकाश प्रकट होने लगता है और ज्योतिष्मती प्रवृत्ति की उत्पत्ति होती है। ध्यान करते समय इस बात को विचारे कि जब सांस अन्दर जाती है तब हृदय के कमल की बारह पंखड़ियां फैल जाती हैं और सांस के बाहर निकलने पर सब पंखड़ियां सिकुड़ जाती हैं। इस भाव से ध्यान करने से मन की एकाग्रता शीघ्र होती है और ज्योति के दर्शन होते हैं तथा साधन में जो विघ्न बाधायें आ जाती हैं वह दूर हो जाती हैं।

---

## छठवाँ उपाय

वीत राग विषयं वा चित्तम्।

अर्थ—विषयों के चित्त को रहित करने से भी मन की स्थिरता होती है।

भावार्थ—हमारे चित्त के अन्दर राग द्वेष का अद्भुत भण्डार भरा पड़ा है और इसी से इसकी चंचलता मिटती नहीं है। यदि चित्त राग द्वेष रहित हो जावे तो मन को एकाग्र होने में क्या देर लगे। मगर वहाँ तो—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे,
राग द्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वश मागच्छेत्तौ,
ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

अर्थात् सभी इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में राग और द्वेष स्थित है, यानी इष्ट वस्तु में राग और अनिष्ट में द्वेष रहता है। अतएव राग द्वेष के वश में कभी न होना चाहिए, क्योंकि ये इस पुरुष के परिपन्थी हैं। परिपन्थी का अर्थ है कल्याण मार्ग में विघ्न करने वाले चोर। इसीलिये राग द्वेष की गणना क्लेशों में की गई है।

जब तक हम प्रिय और अप्रिय वस्तु में समभाव नहीं होते तब तक राग द्वेष से छूटना कठिन है। घर द्वार छोड़ देने पर साधु हो जाने पर भी यह महा क्लेश राग पीछा नहीं छोड़ता। एक बार गंगोत्री में मुझे एक साधु मिले, वे एक एकान्त कुटिया में रहते थे। एक दिन प्रायः उनकी कुटिया से गुजरा तो देखा कि साधु बाबा रो रहे हैं। मैंने पूछा कि बाबा जी! क्या कष्ट है, क्यों रो रहे हैं? उन्होंने कहा कि बच्चा! कष्ट कुछ नहीं है। घर की याद सता रही है। मैंने कहा कि जब आपने घर द्वार छोड़ दिया और साधु हो गये तो अब घर की याद क्यों आ रही है। उन्होंने बतलाया कि मैंने घर वैराग्य होने के कारण नहीं छोड़ा। मेरी अच्छी गृहस्थी थी, सुन्दर

स्त्री थी, पुत्र थे, खेती-बाड़ी थी। सुख से जीवन बीत रहा था। एक दिन मामूली सी बात पर स्त्री से झगड़ा हो गया और कहा सुनी बढ़ गई। मैं रोष में आ गया और घर छोड़ कर हिमालय चला आया और साधु होगया। किन्तु अब घर की याद आती है और वहां के सुख व आराम की सुध आती है तो रुलाई आती है।

राग की उत्पत्ति पूर्व सुखानुभव से होती है। यदि हम कोई सुन्दर पदार्थ देखते हैं, सुन्दर संगीत सुनते हैं अथवा सुन्दर भोजन करते हैं तब हमें एक प्रकार का सुख अनुभव होता है। उस सुख का संस्कार हमारे चित्त पर बन जाता है और अन्यान्तर में उस पूर्वानुभूत सुख का स्मरण हो आता है, उसी को राग कहते हैं।

यदि इन्द्रियों को सुख अनुभव होने वाले विषयों से हटा लिया जावे तो राग उत्पन्न ही न हों। मगर यह बड़ा कठिन काम है कि आँखों से देखने का काम, मुख से खाने का काम आदि बन्द कर दिया जावे। इसलिए चित्त में विषयों की विरागता लाने के लिए वीत राग पुरुषों का चिन्तन तथा ध्यान करना चाहिए। इससे चित्त शुद्ध हो जाता है, वासनायें मिटती जाती हैं और कालान्तर में अनासक्ति हो जाती है। फिर तो आंख देखते हुए नहीं देखती, कान सुनते हुए नहीं सुनते, क्योंकि चित्त उनके विषय से लिप्त नहीं होता है। इस प्रकार चित्त से राग को हटा देने पर मन को स्थिरता हो जाती है, और क्लेश मिट जाते हैं।

## माता-पिता का कर्तव्य

माता-पिता को उत्कृष्ट बच्चे तैयार करके समाज को देने का महत्वपूर्ण कार्य करना होता है, लेकिन बच्चे अच्छे बनाने के लिए माता-पिता को स्वयं अच्छा बनना पड़ता है। उच्चार, आचार और व्यवहार में अच्छा रहना होता है। जो माता-पिता यह चाहते हैं कि उनके बच्चे अच्छे हों उन्हें अत्यन्त जागरूकता रखनी चाहिए। प्रेम, कर्तव्य और सहयोग दिखाई देना चाहिए। यदि बच्चे रात-दिन माता-पिता के झगड़े देखते रहें तो उनके जीवन पर उसका कितना बुरा असर होगा। जब आलसी और विलासी माता पिता सामने होंगे तब बच्चे भी सुख-चैन प्रिय बन जायेंगे।

—सानेगुरु

# गया फिर भी मानव को भूल

दान जप तप कितना भी करो
सभी हैं एक पेड़ की मूल
यदपि तू सीकर सेवा भाव
गया फिर भी मानव को भूल
और भी सेवायें हैं बन्धु !
यह नहीं कि पूजन पश्चात्
तुम्हारे हूवे अधर विभ्रान्त
बक चुके कोई गन्दी बात
बताओ फिर क्या पूजा पाठ
नहीं यह देवों को स्वीकार
भला यह भी कोई है जीव
नहीं जिसको स्वजनों से प्यार
व्यर्थ ही लोलुप हो आचार
और निन्दा का हो व्यापार
सोचलो वहाँ नहीं भगवान
और ना ही उनका आधार
इसी से बन्धु प्रतिज्ञा करो
कि जब तक है साँसों का साथ
पराये हित में कटने सदा
रहे यह प्रभु-चरणों का माथ

—श्री रामचंद्र तिवारी

# योगिराज श्री तैलंग स्वामी

[ डा० विष्णुदत्त शर्मा, बनारस ]

भारत की पुण्य-भूमि में सर्वदा से ही महान आत्माओं का आविर्भाव होता रहा है जिन्होंने अपनी पुण्य-आत्म-शक्ति से इस देश की आध्यात्मिक रंगभूमि को समय-समय पर सुशोभित किया है। इन महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ने से आज के शिक्षित व्यक्ति की बहुत सी भ्रान्तियाँ दूर हो सकती हैं और साथ ही अपने जीवन को उचित मार्ग पर ले चलने में सहायता भी मिल सकती है। पाठक गण इन चरित्रों से कुछ लाभ उठावेंगे यही विचार कर हम इन चरित्रों को 'सिद्धयोग' पत्रिका के आगामी अंकों में शनैः शनैः प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे। प्रस्तुत लेख में काशी के सुप्रसिद्ध महायोगी श्री तैलंग स्वामी जी का योगमय जीवन वर्णित है। लेख में दी गई घटनायें अनेक धार्मिक ग्रन्थों से ली गई हैं। इन ग्रन्थों के रचयिता साधक एवं अन्वेषक दोनों ही हैं जिन्होंने कई वर्षों का अपना बहुमूल्य समय महापुरुषों की जीवनियों के संग्रह में लगाया है। अस्तु!

इन महापुरुष का जन्म आज से लगभग ५०० वर्ष पूर्व आन्ध्र प्रदेश के विजियाना नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता श्री नृसिंहराव व माता विद्यावती दोनों ही बड़े धर्मनिष्ठ, साधु, सेवा-परायण एवं भगवान शिव के अनन्य भक्त थे। माता-पिता ने बालक को भगवान शिव का ही कृपा-प्रसाद समझकर इसका नाम शिवराम रख दिया। यह शिवराम ही आगे चलकर महायोगी तैलंग के स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

एक दिन देवी विद्यावती बालक शिवराम को मंदिर द्वार पर रख कर शिव पूजा के लिए अन्दर गईं। पूजा समाप्त कर लेने पर उन्होंने एक अलौकिक दृश्य देखा कि एक प्रकाश पुंज शिव लिंग से निकल कर मंदिर को प्रकाशित करता हुआ जमीन पर पड़े उस बालक के शरीर में प्रविष्ट कर गया। इस घटना से माता को पूर्ण विश्वास हो गया कि यह कोई साधारण बालक नहीं बल्कि किसी दिव्य शक्ति का ही आविर्भाव इस रूप में हुआ है। प्रारम्भ से ही बालक शिवराम के अन्दर विलक्षणता देखी जाने लगी। खेल-कूद में उसका मन बिल्कुल नहीं लगता था। उसकी यह उदासीनता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। शिवराम का यह बहुत सौभाग्य था कि आध्यात्मिक जीवन के शुरूआत में उसकी माँ ही पहली

आचार्य बनो। सांसारिक विषयों से उपराम हुए पुत्र को देख कर पिता ने विवाह का प्रस्ताव शिवराम के सामने रखा परन्तु शिवराम ने इस पर अपनी असम्मति प्रकट कर दी। दैवी-प्रेरणा से माँ ने भी पुत्र के इन विचारों का समर्थन किया और उसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का अनुसरण कर साधन भजन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की आज्ञा प्रदान की। इस प्रकार शिवराम के आध्यात्मिक जीवन पथ का बहुत बड़ा रोड़ा सामने से हट गया। जिस समय शिवराम ४० वर्ष के हुए उनके वृद्ध पिता का देहावसान हो गया और लगभग १२ वर्ष बाद उनकी माँ भी परलोकवासी हो गयीं। मातृ-वियोग से शिवराम में एकाएक परिवर्तन हुआ। उन्होंने घर की सारी सम्पत्ति एवं परिवार के सभी दायित्वों से पूर्णतया विरत होकर श्मशान में ही एक कुटी बनाकर अपनी साधना आरंभ करदी इस प्रकार वे श्मशान में एक ही स्थान पर बैठकर २० वर्ष तक साधना करते रहे। इतने दिनों की तितिक्षा एवं कठोर साधना के फलस्वरूप उनकी कुटिया में एक दिन अचानक एक तेजस्वी महापुरुष स्थूल रूप से प्रकट हुये और कुछ ही देर में शिवराम को संन्यास-दीक्षा देकर अन्तर्धान हो गये। कहा जाता है कि पंजाब में ही कहीं इन शक्तिधर महापुरुष का आदिवास था, वे ही शिवराम के आध्यात्मिक गुरु हुए। शिवराम का संन्यास का नाम गणपति-सरस्वती पड़ा, परन्तु शरीर तैलंग देश का होने के कारण लोग उन्हें तैलंग स्वामी के नाम से जानने लगे।

दीक्षोपरान्त शिवराम अब और गहन साधना में लग गये। पूर्ण सामर्थ्यवान गुरुदेव की महती कृपा प्राप्त कर वे स्वतः ही दिन-रात अन्तर्मुखी रहने लगे। लगातार १० वर्ष की तीव्र साधना के फलस्वरूप उन्हें परमवस्तु की प्राप्ति हुई। इस समय इनकी उम्र लगभग ८८ वर्ष की थी, परन्तु उनके शरीर पर वृद्धावस्था का कोई भी लक्षण विद्यमान नहीं था। पूर्ण योग सामर्थ्य प्राप्त कर वैसे एक एक शक्तिधर ब्रह्मज्ञानी पुरुष के रूप में उनका अभ्युदय हुआ।

योगिराज श्री तैलंग स्वामी के जीवन में जो योग-विभूति एवं अलौकिक शक्ति का प्रकाश देखा गया, वह कृपा के रूप में अनेक रोग, शोक एवं आर्त प्राणियों के कष्ट-निवारण का कारण बना। आर्त होकर जिसने भी इस महायोगी के हृदय तक अपना निवेदन पहुँचाया वही उनकी करुणा कृपा का पात्र बना।

इसके कई वर्ष बाद की घटना है। तैलंग स्वामी पर्यटन करते रामेश्वरम् पहुँचे। उस समय वहाँ बहुत बड़ा मेला लगा था। उसी मेले में एक दरिद्र एवं रोगी ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हो गई। स्वजनों के रुदन एवं विलाप से वहाँ बड़ा ही करुण दृश्य उपस्थित हो गया था। अचानक तैलंग स्वामी भी उसी ओर से

आ निकले। रुदन एवं विलाप सुनकर उनका अंतर करुणा से भर गया। उन्होंने उस मृत व्यक्ति को स्पर्श किया और आगे की ओर चल दिये। इधर मृत व्यक्ति को हजारों मनुष्यों ने धीरे-धीरे होश में आते एवं आंखे खोलते देखा। उधर योगिराज जन-समूह से बचने के लिये कुछ दूर जाकर अन्तर्धान हो गये। मेले में भी जो सिद्ध पुरुष आये थे उनसे भी स्वामीजी का परिचय अब छिपा नहीं रहा। इसके पश्चात् स्वामी जी तीर्थाटन करते हुए नेपाल पहुँचे और वहां के एक सघन वन प्रदेश में उन्होंने कुछ समय तक निवास किया। एक दिन नेपाल नरेश शिकार खेलते उस वन प्रदेश में जा पहुँचा। उसने वहाँ देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक तेजस्वी महापुरुष बड़े ही शान्त भाव से बैठे हुये समीप में बैठे एक सिंह की पीठ पर हाथ रखकर उसे बड़े स्नेह से सहला रहे हैं। यह महान आश्चर्य देख राजा नत-मस्तक हो गये। योगिराज ने भी उन्हें अभय प्रदान कर कुछ उपदेश दिया। इस महापुरुष का आशीर्वाद प्राप्त करके नरेश पुनः लौट आये। इसके बाद ही योगिराज की अलौकिक शक्ति सामर्थ्य की चर्चा चारों ओर फैलने लगी। तब जन सम्पर्क से बचने के लिये योगि-राज ने उस वन प्रदेश को छोड़ दिया।

नेपाल छोड़नेके बाद स्वामीजी तिब्बत एवं मान सरोवर की यात्रा करते हुए समतल भूमि में उतर रहे थे। पहाड़ से नीचे उतरते समय उन्होंने देखा कि एक विधवा ब्राह्मणी अपनी गोद में अपने ७-८ वर्ष के मृत पुत्र को लिये विलाप कर रही है। गाँव के और लोग उसे सांत्वना दे रहे थे। यह बालक ही उस ब्राह्मणी का एकमात्र सहारा था। अतः माता के रुदन एवं हाहाकार ने एक अत्यन्त करुण दृश्य उप-स्थित कर दिया था। धीरे-धीरे योगिराज उस दुखी देवी के समीप पहुँचे। समीप जाकर करुणा के ओत प्रोत प्रखर श्री तैलंग स्वामी जी ने मृत देह का स्पर्श किया। स्पर्श करते ही संचार होने लगा। इस अलौकिक घटना को देख वहाँ का सारा जन-समूह स्वामी जी के दर्शनार्थ उमड़ पड़ा परन्तु उधर योगिराज तो अदृश्य हो चुके थे। इस घटना से योगि-राज के करुण हृदय का एक अपूर्व दृष्टान्त मिलता है।

कुछ समय पश्चात् स्वामी जी तीर्थाटन करते हुए नर्मदा तट पर पहुँचे। उस समय वहाँ खाकी बाबा नाम के सुप्रसिद्ध शक्तिधर योगी भी निवास कर रहे थे। एक दिन बाबा जो अपनी साधना में बैठने जा रहे थे अ
उनकी दृष्टि जलधारा पर गई। ...
कि नर्मदा का जल दुग्ध में...
और समीप में ही ...
भर-भर कर पान क...
बाबा ने भी अंजलि...
चाहा तो पुनः ...

तैलंग स्वामी जी की बढ़ी हुई आत्म-शक्ति का ज्ञान होने लगा और धीरे-धीरे स्वामी जी से उनका अत्यधिक स्नेह बढ़ गया। बाबा भी स्वामी जी को बड़े ही आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते। नर्मदा तट के मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में भी तैलंग स्वामी जी लगभग ८ वर्ष रहे और तत्पश्चात् प्रयाग की ओर चल दिये।

एक बार की घटना है, योगिराज त्रिवेणी संगम घाट पर बैठे हुये थे। समीप में ही उनके एक अनन्य सेवक उपस्थित थे। थोड़ी ही देर में जोरों की आँधी व वर्षा होने लगी। सेवक ने उनसे किसी ओट में चलने की प्रार्थना की। इस पर स्वामी जी कहने लगे कि मेरी फिक्र मत करो, लेकिन उस नाव में बैठे यात्रियों की रक्षा तो करनी ही होगी। सेवक ने देखा कि बीच धारा में हवा व पानी के थपेड़ों में एक नाव जिसमें काफी यात्री लोग बैठे थे ऊपर नीचे हिलने डुलने लगी और देखते ही देखते वह नाव नदी में डूब गयी। ...यह देखकर सेवक जैसे ही कुछ कहने के ...मी जी की ओर मुड़ा तो उसने ...ा कि तत्क्षण ही वे स्वामी ...गये। पुनः जब सेवक ने ...ण एक आश्चर्य में डूब ...ा पुनः जल के ऊपर ... नौका घाट पर साथ तैलंग स्वामी जी भी उतर गये। स्वामी जी नाव पर कब और कैसे आये, नौका कैसे पुनः जल सतह पर आ गई इस रहस्य को किसी ने नहीं जाना न तो यात्रियों ने ही और न नाविक ने। थोड़ी देर में जब सभी यात्री वहाँ से चले गये तो सेवक ने स्वामी जी को साष्टांग प्रणाम किया और इस अलौकिक योग विभूति का रहस्य जानना चाहा। स्वामी जी मन्द मुस्कान के साथ कहने लगे "भाई इसमें शक्तियों की कोई बात नहीं। यह शक्ति सभी मनुष्यों में सुषुप्त रहती है। इसे जागृत करने पर क्या असम्भव है।" स्वामी जी कुछ समय तक प्रयाग रहे उसके पश्चात वाराणसी चले आये। शेष जीवन इन्होंने यहीं बिताया। काशी में आपने लगभग १५० वर्ष व्यतीत किए और इस अवधि में इनके योगैश्वर्य की अनेकानेक लीलायें प्रगट होती रहीं। भगवान शिव की इस नगरी में वे सचल विश्वनाथ के नाम से सुविख्यात थे। जो भी यात्री काशी जाया करते इनके दर्शनार्थ अवश्य जाते। आरंभ में स्वामीजी अस्सी घाट पर तुलसीदास जी के बगीचे में रहा करते थे। वहाँ के निवास काल में इन्होंने अनेकों रोगियों को अपनी कृपा से रोग मुक्त कर प्राण दान दिया। उन सभी घटनाओं का विवरण देने से लेख बहुत बढ़ जायगा इसी कारण अब यहाँ केवल कुछ मुख्य-मुख्य घटनायें प्रस्तुत करेंगे।

... की घटना है। एक ...

सपत्नीक काशी आये हुए थे। एक दिन जब वे प्रातः काल गंगा स्नान के लिए जा रहे थे उसी समय एकाएक रास्ते में तैलंग स्वामी दिगम्बर वेष में घूमते हुए उधर आ उपस्थित हुए। रानी स्वामी जी को इस वेष में देख कर डर गई और एक बगल हो गई। राजा ने अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि इस पुरुष को पकड़ लो और स्वयं ने भी क्रोध के वशीभूत हो स्वामी जी का काफी अपमान किया। राजा और उनके अनुचरों के इस व्यवहार पर भी स्वामी जी प्रसन्न चित्त एवं मौन ही रहे। उसी दिन रात्रि में राजा एक स्वप्न देखकर अत्यधिक भय एवं घबराहट से चिल्ला उठे। उन्होंने देखा कि एक जटाजूटधारी पुरुष हाथ में त्रिशूल लिए सक्रोध कह रहा है कि ऐ मूर्ख राजा तुमने योगिराज श्री तैलंग स्वामी का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् भी उनका अपमान किया है, अतः तुम जैसे दुराचारी शिवपुरी काशी में रहने के उपयुक्त नहीं हो। तुम यहाँ से शीघ्र ही दूर हो जाओ। भय से व्याकुल राजा ने किसी तरह रात काटी और अगले दिन प्रातः ही वे योगिराज के निकट गये और उनके चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करने लगे। कृपालु स्वामी जी ने उसी समय राजा को क्षमा प्रदान करदी और उन्हें उपदेश देकर जाने की आज्ञा दे दी। योगिराज के योग सामर्थ्य से काशी एवं आस पास जिलों के सभी लोग भली भाँति परिचित थे। अतः जब भी वह रास्ते पर निकलते आधि-व्याधि से पीड़ित जन समुदाय उनका पीछा करते। उनसे बचने के लिए योगिराज का आश्रय था गंगा माता। कभी कभी तो वे कई कई दिन पानी के ही अन्दर समाधिस्थ हो जाते तो कभी इच्छापूर्वक बहुत देर तक जल पर ही पड़े रहते। एकबार उज्जैन के राजा काशी आये। एक दिन जब वे नौका विहार कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक स्थूल काय व्यक्ति उनकी नौका की ही ओर आ रहा है। नौका में बैठे हुए कुछ लोगों ने एवं नाविक ने जो योगिराज जी से परिचित थे उन्हें नाव पर बैठा लिया और राजा को उनका परिचय दिया। इसी समय स्वामी जी मौजी बच्चों की तरह आचरण कर बैठे। उन्होंने राजा की कमर से तलवार खींच ली। कुछ देर तक तो वे तलवार को अपने हाथ से घुमाते फिराते रहे और फिर गंगा में फेंक दी। राजा को यह तलवार अंग्रेज सरकार से पुरस्कार रूप में प्राप्त हुई थी अतः इस मूल्यवान वस्तु को खोकर उनके क्रोध की सीमा न रही। मौजी संन्यासी को वे कठोर दण्ड देने की धमकी देने लगे। नाव पर कुछ लोग राजा को आश्वासन देने लगे कि गोताखोरों के द्वारा तलवार निकलवाने की चेष्टा की जायगी परन्तु इस पर भी राजा का स्वामी जी पर क्रोध शान्त नहीं हुआ। स्वामी जी मौन भाव से सब कुछ देख-सुन रहे थे। धीरे-धीरे किनारे पर नाव आ लगी, तभी स्वामी जी ने गंगाजल

में अपना हाथ डाला और दो तलवारें ठीक वैसी ही निकाल लीं और राजा से कहने लगे कि जो तुम्हारी हो उसे ले लो। राजा आश्चर्य में पड़ गया कि कौनसी तलवार वह ले। तभी स्वामी जी बोल उठे, "राजन्! जिसे तुम अपनी वस्तु कह रहे थे उसे पहचान तक न सके। तुम मोह, लोभ एवं अभिमान में डूबे हुये हो।" इतना कहकर स्वामी जी ने एक तलवार राजा को दे दी और दूसरी जल में फेंक दी। राजा को अब अपनी भूल समझ आ गई, वे स्वामी जी के चरण-कमलों में गिर कर क्षमा-याचना करने लगे। दयालु योगिराज राजा को क्षमा प्रदान कर पुनः गंगा की लहरों में अदृश्य हो गये। इस प्रकार तैलंग स्वामी अद्भुत-कर्मी के नाम से ख्याति पाने लगे।

एक बार स्वामी जी को नग्न वेष में रहने के कारण काशी के तत्कालीन अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने उन्हें गिरफ्तार कराके जेल में बन्द करवा दिया। इधर स्वामी जी के भक्तगण एक वकील को साथ लेकर जिला अधिकारी से मिले और उनसे अनुरोध किया कि स्वामीजी विख्यात महापुरुष हैं, उन्हें कारागार से मुक्त किया जावे। सांसारिक लोभ, मोह से परे ये सभी में सम-दृष्टि रखने वाले हैं। अतः शरीर पर वस्त्र धारण करने की आवश्यकता नहीं समझते। यह सुनकर जिला अधिकारी ने कहा ठीक है, यदि इस व्यक्ति की सभी वस्तुओं में कोई भेद नहीं है तो इसे मेरे सामने ही मेरा भोजन ग्रहण करना होगा। तैलंग स्वामी जी को बुलाकर पूछा गया कि उन्हें साहब का भोजन ग्रहण करने में कोई आपत्ति तो नहीं है। जिला अधिकारी तो यही देखना चाहते थे कि यह साधु अपवित्र मेरा मांसयुक्त भोजन कैसे ग्रहण करेगा। स्वामी जी जो अब तक मौन थे कहने लगे, "महाशय मैं तो आपका भोजन ग्रहण करूँगा हाँ, परन्तु उससे पूर्व आपको मेरा भोजन ग्रहण करना होगा। अंग्रेज जिला अधिकारी ने अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने सोचा कि भारतीय साधु-सन्त तो प्रायः फलाहार ही करते हैं तो इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। उसी समय स्वामी जी ने एक अद्भुत कार्य कर डाला। अपने हाथ ही मल त्याग कर साहब की ओर फैलाते हुए उन्होंने कहा, "साहब यह ही मेरा आज का भोजन है।" यह देख साहब ने तो मुँह फेर लिया, परन्तु प्रत्येक वस्तु में सम बुद्धि रखने वाले विरक्त ज्ञानी महायोगी उसे निर्विकार चित्त से निगल गये। कहा जाता है कि उसे निगलने के कुछ पूर्व ही यह घृणित वस्तु योग शक्ति के प्रभाव से एक अत्यन्त सुगन्धित वस्तु के रूप में परिणित हो गई थी, जिसकी सुगंध अदालत के कमरे में सर्वत्र फैल गई और वह सुगंध वहाँ बहुत देर तक बनी रही। साहब को समझते देर नहीं लगी कि यह कोई उच्च कोटि के संत हैं। अतः उन्होंने तुरन्त

ही सम्मानपूर्वक स्वामी जी का अभिवादन किया और आदेश दिया कि स्वामी जी नग्न रहकर जहाँ भी चाहें विचरण करें। उन्हें इसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं दी जायेगी।

कुछ महीने बाद ही उस जिला अधिकारी का कहीं अन्यत्र स्थानान्तरण हो गया और इसकी जगह पर एक दूसरा साहब आया जो बड़ा ही कठोर शासक था। एक दिन जब वह दशाश्वमेध घाट की ओर गया तो उसने देखा कि एक नग्न व्यक्ति जन-समूह में मस्ती के साथ घूम रहा है। यह देख जिला अधिकारी अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और तुरन्त ही स्वामी जी को कारागार में बन्द कर देने का आदेश दे दिया। दूसरे दिन जब साहब कैदियों को हवालात में देखने गये तो उन्होंने देखा कि वही नग्न व्यक्ति अपने कमरे से बाहर निकल कर शान्त भाव से हवालात के बरामदे में टहल रहा है। मजिस्ट्रेट ने पहरेदारों को बुलवाया और उन पर काफी क्रुद्ध हुआ कि कैसे इस व्यक्ति को कमरे से बाहर जाने दिया। पहरेदार भी आश्चर्य और भय में डूबे हुए थे कि कमरा उसी प्रकार बन्द है, ताला लगा हुआ है फिर यह स्थूलकाय व्यक्ति कमरे से कैसे बाहर आ गया। सभी के लिए यह बहुत बड़ा आश्चर्य था। कोई भी इस रहस्य को नहीं जान सका तब मजिस्ट्रेट ने गंभीर होकर मौनी संन्यासी से पूछा कि ठीक-ठीक बतलाओ, तुम कमरे से बाहर किस प्रकार आये। स्वामी जी ने मौन भंग करते हुए सहज भाव से उत्तर दिया कि "प्रभात वेलामें कमरे से बाहर आने की इच्छा हुई और इच्छा होते ही मैं बाहर आ गया। इसमें मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं हुई।" स्वामीजी का यह कथन सुनकर उनके अमित योगैश्वर्य से पूर्ण अपरिचित वह जिला अधिकारी और भी अधिक क्रुद्ध हो गया। उसने पुनः स्वामी जी को उस कमरे में बन्द कर और स्वयं दोहरा ताला लगाकर अदालत को प्रस्थान किया। जैसे ही साहब ने अदालत में अपने कमरे में प्रवेश किया तो देखा कि एक कोने में वही नग्न व्यक्ति खड़ा है। इस अलौकिक घटना से साहब भय एवं आश्चर्य में डूब गया। योगिराज त्रैलंग धीरे-धीरे साहब के नजदीक आये और शान्त भाव से कहने लगे, "महाशय! तुम्हें जड़ वस्तु जब ही दिखलाई देती है परन्तु तुम शायद नहीं जानते कि इस जड़ जगत में भी एक महान् चेतन सत्ता ओत-प्रोत है। जिसका भी इस चेतन सत्ता से सम्पर्क हो जाता है उसे कोई बन्धन नहीं, कोई बाधा नहीं। योगियों के लिए संसार का कोई भी कार्य कभी असाध्य नहीं हो सकता। अतः बोलो तुम्हें मुझे परेशान कर क्या मिलेगा? और इसके सिवाय तुममें शक्ति ही कितनी है। यह सुनकर साहब के होश उड़ गये। उन्होंने दीन होकर अत्यधिक क्षमा प्रार्थना की और दयालु स्वामी जी उसे क्षमा कर वहीं अदृश्य

हो गये। उसी दिन जिलाधीश महोदय ने केवल स्वामी जी के ही लिए एक विशेष आदेश निकाला कि आजन्म में तैलंग स्वामी जी नग्न वेष में जहाँ चाहें वहाँ घूम सकते हैं। इसमें कभी भी कोई बाधा उपस्थित नहीं करेगा।

एक बार की घटना है, काशी में विश्व विख्यात संत श्री रामकृष्ण परम हंस आये हुए थे। विश्व नाथ जी के दर्शनोपरान्त परम हंस जी सनातन-सिद्ध श्री तैलंग जी के दर्शनार्थ पहुँचे। उन्होंने दूर ही से देखा कि धूप में तपी हुई बालू के ऊपर स्वामी जी आनन्द से सोये हुए थे। परमहंस जी अपने सेवकों से कहने लगे "देखो साक्षात् विश्वनाथ इनके शरीर का आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। ये तो साक्षात् विश्वेश्वर हैं। ये उच्च-ज्ञानावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। इनका कोई भी कर्म अब शेष नहीं रहा।"

श्री तैलंग स्वामी दीर्घकाल तक बिना कुछ खाये पीये रह जाते थे। खाद्य-अखाद्य के सम्बन्ध में समभाव रखने वाले इन महा-योगी के विरुद्ध एक बार कुछ दुर्बुद्धि व्यक्तियों ने एक षड्यंत्र रचा। उन्होंने एक बालटी में चूना मिश्रित जल भर कर उन्हें पिलाना शुरू किया। महापुरुष समस्त चूना मिश्रित जल पी गये। योगिराज के मुख मंडल पर निर्विकार भाव देखकर न मालूम क्यों इन दुष्टों को पश्चात्ताप होने लगा। वे बार-बार उनके चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करने लगे। कुछ समय बाद तैलंग महाराज को जब बाह्य ज्ञान हुआ तो उन्होंने उन सभी व्यक्तियों के सामने सहज ही मूत्रद्वार से सम परिमाण में चूना-मिश्रित जल बाहर निकाल दिया।

बंगाल के प्रसिद्ध सन्त प्रभुपाद श्री विजय कृष्ण गोस्वामी जी की आध्यात्मिक साधना में महायोगी तैलंग स्वामी जी की विशेष कृपा बनी रही। गोस्वामीजी ने योगिराज से प्रथम मिलन का स्वयं ही विवरण इस प्रकार दिया है, "तैलंग स्वामी जी गंगा धारा में एक घाट से दूसरे घाट पर बहते हुए विचरण कर रहे थे और मैं किनारे-किनारे उनके साथ दौड़ रहा था। कभी तो वे गंगा धारा में तैरते रहते तो कभी डुबकी लगाकर दूर किसी घाट पर जल सतह पर आ जाते। उस समय मैं गंगा-तट से दौड़ता हुआ वहाँ तक आ जाता। एक दिन स्वामी जी एक काली मन्दिर में गये। वहाँ वे त्यागकर काली के अङ्ग पर छिड़कने लगे। मैंने पूछा 'आप यह क्या कर रहे हैं' तो उन्होंने जमीन पर लिख दिया "गंगोदकम्।" मैंने पूछा काली को मूर्ति पर क्यों छिड़का? उन्होंने सहज भाव से उत्तर दिया 'पूजा।'"

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी को बाह्य ज्ञान श्री तैलंग का यह आचरण शायद उस समय अनुचित लगा हो परन्तु आदर्श उन्हें इस

महायोगी की अनन्त दिव्य शक्ति का आभास हो गया था। योगीश्वर की लीलामें उस समय भेद दृष्टि रहने के कारण उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ और बादमें उन्होंने करबद्ध होकर गद्‌गद् कण्ठ से क्षमा प्रार्थना की। गोस्वामी जी ने स्वयं लिखा है कि "इसके बाद उन्होंने मुझे विविध-भोग दिया और आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा 'अब जाओ'।"

एक बार जब काशी के सुप्रसिद्ध योगी श्री श्यामाचरण लाहिरी श्री तैलंग जी के दर्शनार्थ पहुँचे तो स्वामी जी ने उन्हें दौड़कर गले से लगा लिया और अत्यधिक प्रेम करने लगे। यह देख कर वहां के कुछ सत्संगियों को जो श्री श्यामाचरण लाहिरी जी की प्रतिभा से विशेष प्रभावित नहीं थे। अत्यन्त आश्चर्य हुआ क्योंकि स्वामीजी ने एक साधारण गृहस्थ को इतना सम्मान दिया। योगिराज तैलङ्ग उनके मनोविकार को जानकर कहने लगे कि योग की जिस उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिए तपस्वियों को लंगोट का भी त्याग कर देना होता है, उसी अवस्था को योगी-पुरुष पहले इस शक्तिमान गृहस्थ ने सहज ही में गुरु कृपा द्वारा प्राप्त कर लिया है। इस घटना के उपरान्त लाहिरी महाशय काशी जन-समाज से छिपे न रह सके। श्री लाहिरीजी को योगी गुरु के रूप में इस शिव-काशी में जो प्रतिष्ठा मिली उसमें तैलंग स्वामी द्वारा उनकी सस्नेह स्वीकृति भी एक महान् कारण थी।

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में श्री तैलंग स्वामी अधिकतर पंच-गंगा घाट पर रहने लगे। कभी-कभी दशाश्वमेध घाट पर या मणि-कर्णिका घाट पर की श्मशान भूमि पर भी विचरण किया करते थे। शिव-धाम वाराणसी में शिव-तुल्य इस महायोगी की १५० वर्षों तक एक न एक लीला प्रगट होती ही रही। अपने शरीर त्याग का समय उन्होंने भक्त-गणों को पहले ही से बतला दिया था। अतः निर्दिष्ट समय पर लगभग ८०० वर्ष की आयु में १२९४ (फसली) साल का पौष मास, शुक्ला एकादशी के दिन इस महायोगी की अमर आत्मा ने शरीर त्याग किया।

भगवान पतंजलि देव ने अपने योग दर्शन के विभूति पाद में एक पूर्ण योगी की अचिन्त्य योग सामर्थ्य के बारे में सैद्धान्तिक रूप से उल्लेख किया है। श्री तैलंग स्वामी जी के योगैश्वर्यमय जीवन में इन सभी अलौकिक योग-विभूतियों को काशी जन समुदाय ने समय-समय पर प्रगट होते हुए देखा है। इन महापुरुष का यह योगयुक्त अलौकिक जीवन चरित्र इस देश के आध्यात्मिक इतिहास को सदैव गौरवान्वित करता रहेगा।

# माया

[ श्री कमलेश कुमार कौंठ ]

अद्वैत के अनुसार केवल एक ब्रह्मसत्ता ही विद्यमान है। ब्रह्म चेतन व पूर्ण है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है। विज्ञान के अनुसार भी पूर्ण अपूर्ण नहीं हो सकता उसी प्रकार अद्वैत वाद के अन्दर ब्रह्म जो चेतन व पूर्ण है कभी अपूर्ण नहीं हो सकता। पूर्ण कभी अपूर्ण नहीं होता एवं सत्य भी कभी असत्य नहीं हो सकता। पूर्ण को हम कभी विभक्त नहीं कर सकते। पूर्ण कभी देश-नियम-काल के आधीन नहीं होता, लेकिन फिर भी हमें पूर्ण ब्रह्म सत्ता में अनेकत्व, विभिन्नता अथवा संसार भासता है। निरपेक्ष अद्वैत की नींव पर, पूर्ण अपूर्ण क्यों भासता है, इसका कोई समाधान नहीं हो सका। इसके समाधान के लिए ही ब्रह्म में कल्पन मात्र माया की कल्पना की गई एवं इसी से संसार की व्याख्या की गई।

वेदान्त में माया शब्द की कोई परिभाषा देखने को नहीं मिलती केवल घटनाओं के क्रम से इसे समझाने की चेष्टा की गई है। सांख्य मत में ब्रह्म में माया के प्रत्यक्ष को, पुरुष-प्रकृति के रूप में समझा जा सकता है। अतः सर्व प्रथम हम कुछ दृष्टिपात सांख्य मत पर करते हैं। तब हम पाते हैं कि सांख्य मत के अनुसार पुरुष व प्रकृति दो तत्त्व विद्यमान हैं इसमें प्रकृति अपनी मूल अवस्था में एक सर्व-व्यापी, अखण्ड, अविभक्त एवं जड़ शक्ति के रूप में मानी गई है तथा पुरुष एक सर्वव्यापी चेतना के रूप में माना गया है। पुरुष की चेतनता के प्रतिबिम्ब मात्र से प्रकृति चेतन रूप हुई त्रिगुणमयी माया के रूप में, परिणाम को प्राप्त हुई, जगत की रचना, स्थिति एवं प्रलय कर रही है या गुणों को गुणों में बर्त रही है दूसरे शब्दों में जगत का आदि कारण प्रकृति है। तीनों गुणों अर्थात् सत-रज-तम की साम्यावस्था प्रकृति है जो अव्यक्त है। जब यह साम्यावस्था भंग होती है तो यह त्रिगुणमयी माया के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

सांख्य मत में पुरुषों की संख्या अनन्त मानी गयी है एवं प्रकृति को भी एक अनन्त के रूप में देखने की चेष्टा की गई है। यदि पुरुष असीम है तो अनन्त संख्या नहीं हो सकते कारण असीम केवल एक ही हो सकता है अन्यथा एक असीम दूसरे असीम को ससीम करने की चेष्टा करेगा इसी प्रकार पुरुष व प्रकृति दोनों अनन्त नहीं हो सकते। सांख्य मत इन प्रश्नों का कोई उत्तर न दे सका। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्रकृति पुरुष का अंश मात्र है एवं केवल एक अनन्त सर्वव्यापी चेतना ही है।

उपरोक्त विचारों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रकृति अनन्त गुणों का वह परिवर्तित रूप है, जो प्रकाश रूप होता है। प्रकाश कभी नष्ट नहीं होता। गुणों को गुणों में बर्तने के कारण प्रकृति अनादि एवं अनन्त है। इस प्रकार हम कह सकते हैं।

माया = प्रकृति + अन्धकार से अभेद

अतः प्रकाश की वह निम्नतम सीमा जहाँ प्रकाश भी अन्धकार भासे माया कहलाती है। जो सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य कर दे माया कहलाती है। जो जड़ को चेतन व चेतन को जड़ दिखा रही है माया कहलाती है। वह सब कुछ जो हमें सच्चिदानन्द से विमुख किये है माया कहलाती है। वह सब जो हमें विरोधाभास, विलोमता, अपवाद, अनेकत्व या सापेक्षिता की ओर ले जाती है माया कहलाती है। वह सब कुछ जो आत्मा को परमात्मा से विलग किये है माया कहलाती है। वह सब कुछ जो मन को प्रतिक्रियात्मक बनाती है माया कहलाती है।

हमें जो कुछ भी संसार का बोध हो रहा है या नाम-आकार भेद भास रहा है, सब तुलनात्मक अध्ययन अथवा सापेक्षिता के कारण है अन्यथा कुछ भी नहीं है। हम बाह्य जगत को अथवा बाह्य सत्ता को आन्तरिक जगत अथवा अपने मन के संस्कारों से तुलना करके, रंग के, देखते हैं जिससे ही विरोधाभास उत्पन्न होता है एवं एक ही सत्ता विभिन्न रूपों में या नाम आकार भेद में भासती है या पूर्ण अपूर्ण भासता है जो कि हमारे मन के संस्कारों के कारण होता है यही माया है। जिस प्रकार एक सूर्य अनेकों जल कणों में अनेक अनेकों सूर्यों के रूप में भासता है उसी प्रकार एक ही बाह्य सत्ता अनेकों रूपों में भासती है, यही माया है। पूर्ण अपूर्ण नहीं हो सकता फिर भी अपूर्ण भासता है, यही माया है। इसको हम रेगिस्तान में भासने वाले मृग मरीचिका, कस्तूरी मृग अथवा कुत्ते के मुख में सूखी हड्डी, जिसको रगड़ कर चाटने से उसके खुद के मसूड़ों से मांस व खून उसे मिलता है लेकिन कुत्ता यह समझता है कि यह उस हड्डी का अंश है, से भी समझ सकते हैं। हम असत्य से सत्य लाभ नहीं कर सकते, निम्नतम सत्य से उच्चतम सत्य की ओर जा सकते हैं अतः पूर्ण को पाने के लिए माया से रहित होना होगा।

समाधि अवस्था में केवल एक ही भासता है अतः माया व्यष्टि ( क्षुद्र ब्रह्माण्ड ) में अभ्यास के बल पर शान्त है। समाधि अवस्था में विरोधाभास समाप्त हो निरपेक्षिता, परिस्थानाभिता, एकत्व ही भासता है। समष्टि (वृहद् ब्रह्माण्ड) में माया अनन्त ब्रह्म रूप व कल्पना मात्र है। वास्तव में ब्रह्म में माया अनिर्वचनीय है। ब्रह्म में माया है भी और नहीं भी कारण व्यष्टि में माया शान्त हो जाने पर, मन संस्कारों से रहित हो प्रकाश रूप

हो जाने पर, केवल ब्रह्म ही भासता है। समझाने के लिए ब्रह्म में कल्पना मात्र माया की कल्पना की गई है। अब हम संसार की व्याख्या कार्य–कारण सम्बन्धी नियम से करते हैं। महर्षि कपिल देव जी के अनुसार—:

कार्य =कारण का रूपान्तर

पूर्ण जो पूर्ण होता है उसका रूपान्तर सम्भव नहीं दूसरे यदि कारण अनन्त है तो कार्य भी अनन्त होगा। इसलिए संसार का कारण कभी पूर्ण नहीं हो सकता, कारण संसार अनित्य, दुःख–सुख का पुञ्ज है एवं मन के भ्रम से भासित है, जो कि अभ्यास से तिरोहित हो जाता है। अतः संसार का कारण भी यही माया है इसके निवृत्त हो जाने पर संसार का तीनों कालों में अभाव हो जाता है। हम यह कह सकते हैं—:

संसार=मन+अहंकार+भ्रम

इसलिए कहा जाता है कि संसार मन के भ्रम से भासित है, संकल्प विकल्प मात्र है। संकल्प-विकल्प क्षय हो जाने पर केवल ब्रह्म ही भासता है।

कर्मवाद के अनुसार भी कर्मों का वह समूह जो हमें अन्धकार में अभेद रखता है माया कहलाता है। अतः

कर्म+अन्धकार=माया

कर्ता+क्रिया+कारण+अंधकार=माया

वास्तव में उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि न पूर्णतया द्वैत ही है न पूर्णतया अद्वैत ही है एक ऐसी स्थिति है जो केवल अभ्यास व गुरु कृपा से प्राप्त हो सकती है इस स्थिति को पाने के बाद संसार केवल भाव मात्र ही भासता है अन्यथा केवल एकत्व ही भासता है। हम पूर्ण का वर्णन भी नहीं कर सकते अन्यथा वह ससीम हो जायेगा अभ्यास से केवल उसका प्रतिबिम्ब मात्र अनुभव कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम ब्रह्म रूप हो सकते हैं लेकिन शब्दों से उसका वर्णन नहीं कर सकते कि ब्रह्म क्या है। फिर भी अद्वैत ही श्रेष्ठ है कारण समाधि में केवल एकत्व या एक ही भासता है। अतः माया केवल समझी जा सकती है लेकिन इसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। इस माया से निवृत्त हो सच्चिदानन्द की प्राप्ति ही योग है।

## छः बान्धव हैं

सत्यं माता, पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रो षडेते मम बान्धवाः॥

सत्य मेरी माता है, ज्ञान पिता है, धर्म भाई है, दया मित्र है, शान्ति पत्नी है और क्षमा पुत्र है:—ये छः मेरे बान्धव हैं।

# जाने कब उड़ जाएँ

जी भर के गा लो भाई प्यार के तराने,
जाने कब छूट जायें, मीत के जमाने !
वासन्ती यौवन पहने, पतझर की काया।
पतझर की धूप प्यारे, पतझर की छाया ॥
जाने कब छूट जायें रिश्ते राम जाने !
किस्मत का खेल सारा, दो दिन का मेला।
कोई न संग आए, जायेगा अकेला ॥
जाने कब छूट जाये, ठाँव ये विराने !
पानी में तैर रही, नावों की चादर।
लहरों के ज्वार-भाटे, गहरा है सागर ॥
जाने कब डूब जायें, पाल ये पुराने !
कथनी न काम आए, काम आए करनी।
रसरी के हाथ नाचे, कुए पे घिरनी ॥
जाने कब लुट जायें साँस के खजाने !
हँस हँसके पीले भैया, उसकी शराब।
काँटों में जीते जैसे, जी रहा गुलाब ॥
जाने कब मिट जायें, सुर्ख-आशियाने !
चमड़े के खोल में है, अस्थियों का ढाँचा।
सब कुछ है झूठ बन्दे, 'हरि-नाम' साँचा ॥
जाने कब टूट जायें काँच के ठिकाने !
काँधों पै सोई खोई, सपनों की डोली।
कफन और राख धुँआ, छोड़ चली होली ॥
जाने कब उड़ जायें तने शामियाने !
जीभर के गालो प्यारो-प्यार के तराने ॥

—प्रो० श्री हरि 'निर्मोही'

# राजाभोज का पूर्व जन्म

[ श्री पूर्णचन्द्र पन्त, शास्त्री ]

श्री मद्भगवत गीता में योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने स्पष्ट तौर पर इस बात की पुष्टि की है, कि मनुष्य अपने जीवन काल में जिस प्रकार के शुभ और अशुभ कर्म करता है उसी के अनुरूप ही वह पुनः शरीर धारण करता है। जब तक उसकी कर्मों में आसक्ति बनी रहेगी, तब तक उसे विवश होकर अपने पूर्व-सञ्चित कर्मों का फल भोगना पड़ेगा। अतः मानव का कर्तव्य है, कि वह निष्काम-भाव से कर्म करता हुआ त्यागमय जीवन व्यतीत करे। प्रस्तुत कथा राजा भोज के पूर्वजन्म से सम्बन्धित है। इसमें त्याग की महिमा के साथ-साथ प्रसंगवश इस बात का भी उल्लेख किया जा रहा है, कि नारी पातिव्रत्य धर्म के पालन मात्र से ही उन अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर सकती है, जिन्हें पुरुष महान तप के बाद प्राप्त करता है। कहानी इस प्रकार है:—

एक बार राजा भोज के मन में अपना पूर्वजन्म जानने की इच्छा हुई। उसने इस सम्बन्ध में कालिदास से पूछा। कालिदास ने जब यह बताने में अपनी असमर्थता प्रकट की, तो राजा ने उसे छः महीने का समय देते हुए कहा कि यदि इस अवधि में तुमने मेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त ज्ञात करके मुझे नहीं बताया तो तुम्हें दण्ड दिया जायेगा।

कालिदास तब से बड़ा उदास रहने लगा, जब पाँच महीने बीत गये, तो उसकी उदासी ने चिन्ता का रूप धारण कर लिया। उसके घर में पुत्रवधू के अतिरिक्त कोई नहीं था। क्योंकि उसकी पत्नी और पुत्र पहले ही मर चुके थे। एक दिन कालिदास की पुत्रवधू उसे भोजन परोस रही थी। वह दो कौर खाकर ही उठ खड़ा हुआ और उदासी की हालत में बाहर जाने लगा। पुत्रवधू अपने श्वसुर की बढ़ती हुई उदासी को कई दिनों से देख रही थी पर पूछने का साहस नहीं कर पा रही थी, किन्तु इस बार उससे रहा नहीं गया। वह सम्मुख खड़ी होकर हाथ जोड़ती हुई बोली तात ! अब तक आप से मैंने बात नहीं की, परन्तु आपका दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। अतः आगे बोलने का साहस कर रही हूँ, आप मेरे पिता के तुल्य हैं। अतः सच सच बतायें, कि आप क्यों इतने दुखी हैं ?

कालिदास ने राजा भोज का आदेश सुना दिया, इस पर वह प्रसन्न होकर बोली बस! इतनी सी बात है? आप राजा से कह दीजिये कि आपके पूर्वजन्म का वृत्तान्त तो मेरी पुत्र-वधू भी बता सकती है। आप उसी से पूछ लीजिए। जब कालिदास ने राजा को यह बताया, तो उसने कालिदास की पुत्रवधू को दरबार में हाजिर होने को कहा, किन्तु उसने राजा को कहला भेजा, कि महाराज! आप मेरे पिता के तुल्य हैं। यदि आप अपने पूर्व-जन्म का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं तो मेरे घर आने का कष्ट कीजिए। राजा ने विचार किया, कि यह स्त्री जो मेरे पूर्वजन्म के विषय में जानती है, अवश्य महान विदुषी होगी। अतः उसके घर अवश्य जाना चाहिए।

राजा प्रसन्न होकर कालिदास के घर पहुँचा। उसकी पुत्रवधू ने राजा का यथोचित सत्कार किया। तब राजा भोज ने अपने पूर्व जन्म का वृतांत पूछा तो वह बोली, महाराज! यदि आप अपने पूर्व जन्म का पूरा वृत्तान्त जानना चाहते हैं, तो आप यहाँ से उत्तर दिशा की ओर चले जाइये। १०० मील की दूरी पर अमुक ग्राम है, वहाँ एक किसान रहता है। उसका एक २० वर्षीय पुत्र है। जिस दिन आप वहाँ पहुँचेंगे, उसी दिन उस किसान की गौयें चोरी जायेंगी। तब किसान का पुत्र चोरों के पीछे भागेगा, किन्तु चोर उसे मार डालेंगे। आप उसे बचाने का प्रयास करना। तब वह आपके पूर्व जन्म की सब बात बतायेगा।

यह सुनकर राजा वहाँ से उठकर अपने महल में आया। राज-काज प्रधान को सौंप साधारण वस्त्र पहन कर किसी से कुछ कहे बिना अकेला उत्तर दिशा की ओर चल पड़ा। चौथे दिन संध्या समय वह एक गाँवमें पहुँचा। यहाँ रात्रि कैसे बिताई जाये? इस विचार में राजा खड़ा था कि किसान का लड़का गायें चराता हुआ दृष्टिगोचर हुआ। वह राजा को देखते ही बोला—राजा भोज! आओ-आओ।

राजा ने आश्चर्यपूर्वक कहा—भाई! मैं तुम्हें जानता नहीं, पर तुम मुझे कैसे जानते हो?

लड़के ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—कालिदास की पुत्रवधू ने तुम्हें जिसके पास भेजा है, मैं वही हूँ। राजा बोला—तो फिर जिस काम के लिए मैं आया हूँ, उसे बता। लड़के ने कहा—यह बात तो मैं तुमसे पीछे कहूँगा। अब मेरे साथ घर चलकर विश्राम करो। आज आधी रात होने पर हमारे घरकी गायें चुराई जायेंगी। मैं चोरों का पीछा करूँगा और वे मुझे मार डालेंगे, परन्तु मेरे प्राण दस घड़ी दिन चढ़े तक बने रहेंगे। उस समय तुम आना। तब मैं सारी बात बताऊँगा।

लड़के के कहे अनुसार राजा उसके साथ

गया। भोजन किया और विश्राम करने लगा। सब लोग सो गये, परन्तु राजा को नींद नहीं आई। आधी रात होने पर चोर चुराने को घुस गये। सेठ का पुत्र तलवार लेकर चोरों के पीछे भागा। राजा भी उसके साथ जाने लगा, किन्तु किसान ने उसे रोकते हुए कहा—भाई! तुम परदेशी हो। इस समय कहाँ जाते हो? प्रातःकाल होने पर जाना। अकेले मार्ग भूल जाओगे। किसान को चोरी की घटना का कुछ भी पता नहीं चला। अतः न वह स्वयं ही बाहर निकला और न राजा को ही जाने दिया। जब दो घड़ी दिन चढ़ आया, तब राजा को जाने दिया। वह वहाँ गया, जहाँ लड़का पड़ा था। राजा को देखकर लड़का बोला—राजा भोज! तुमने बहुत देर कर दी। अब तो मेरे प्राण निकलने वाले हैं। इस कारण अधिक नहीं बोला जाता। फिर भी तुम्हें उपाय बताये देता हूँ। यहाँ से एक महीने के मार्ग पर पाटन नगर नामक एक गाँव है, तुम वहाँ पर आना। मैं उस ग्राम के नगर-सेठ के यहाँ जन्म लूँगा। मुझे तुम्हें चालीस हजार रुपये देने हैं और सेठसे चालीस हजार रुपये लेने हैं। तुम्हें सेठ से यह रकम दिलवाकर दूध पीकर मैं फिर शरीर छोड़ दूँगा। यदि तुम एक महीने के भीतर उस नगर में नहीं आओगे, तो तुम्हें ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या और बालहत्या का पाप लगेगा। इतना कहने पर उसके प्राण निकल गये।

राजा वहाँ से चल दिया। चलते-चलते एक मास में पाटन नगर के पास पहुँचा। सन्ध्या होने लगी थी। नगर अभी कुछ दूर था। वहाँ एक कुटी में एक भील और भीलनी रहती थी। राजा को देखकर भीलनी बोली—आओ राजा भोज आओ! राजा आश्चर्य-चकित होकर बोला—इस ग्राम में न तो मेरा राज्य है और न कभी मैं यहाँ। तब तुमने मुझे कैसे पहचाना?

भीलनी ने कहा—अपने पतिव्रतापन के प्रताप से। कुछ क्षणों के उपरान्त भीलनी बोली—अब रात्रि होने वाली है। इसका क्या विचार किया? इस वन में जानवरों का अधिक भय है। अन्धकार होने पर सिंह व्याघ्रादि निकल पड़ते हैं। इस कारण आज की रात्रि तुम यहीं ठहर जाओ।

राजा ने यह बात स्वीकार करली। भीलनी ने राजाको भोजन कराया और कहा—यदि तुम इस कुटी से बाहर सोओगे, तो सिंह तुम्हें और तुम्हारे घोड़े को खा जायेगा। अतः तुम कुटी के अन्दर ही रहना और मेरा पति हाथ में धनुष लिए रात भर बाहर पहरा देता रहेगा। तब राजा और भीलनी कुटी में सो गये और भील धनुष-बाण लिए कुटी के बाहर पहरा देता रहा। जब आधी रात हो गई तो भील को नींद का झोंका आ गया और उसका धनुष-बाण नीचे गिर गया। मौका पाकर शेर ने उस पर हमला कर दिया और

उसे दूर ले जाकर मार डाला। भीलनी यह जानकर चिल्लाई—उठो राजा ! मेरे पति को शेर ने मार डाला है। राजा अस्त्र सँभाल कर बाहर निकला और देखता है कि दो-तीन शेर एक साथ भील को खा रहे हैं। अब तक भील मर चुका था। अतः शेरों पर हमला करना व्यर्थ था। राजा वापिस कुटिया में लौट आया। प्रातः काल होने पर भीलनी ने कहा—अब मैं सती होती हूँ। अतः लकड़ियाँ इकट्ठी करके चिता तैयार करो।

राजा ने बड़ी दीनता से कहा अब समय बहुत थोड़ा रह गया है अतः मुझे जाने दो।

भीलनी ने कहा—राजा ! तुम्हें जो काम है, वह मैं जानती हूँ। अब यदि तुम मेरा कहा नहीं मानोगे, तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगी। राजा धर्मसंकट में पड़ गया। वह सोचने लगा एक ओर तो हिंसा होती है और दूसरी ओर शाप लगता है। उसने विचारा कि इसके शाप से बचनाही ठीक है। उसने लकड़ियाँ एकत्र करके चिता तैयार की और कहा अब मुझे आज्ञा दो।

भीलनी ने दृढ़ता से कहा नहीं अभी तुम नहीं जा सकते। तीन दिन तक मेरी चिता जलने दो और चौथे दिन प्रातःकाल तुम्हें जहाँ जाना हो चौक से जाना। राजा ने बहाना किया—रात को सिंह मुझे खा डालेंगे। भीलनी ने उत्तर दिया रात्रि के समय मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। राजा को विवश होकर रुकना पड़ा इसके पश्चात् भीलनी चिता पर बैठी और राजा ने उसे प्रज्वलित किया। चिता चारों ओर से धू-धू कर जलने लगी और भीलनी मुस्कराती हुई उस पर बैठी रही। उस पर आग का कुछ भी असर नहीं हुआ। इस प्रकार सारे दिन भीलनी को न जलते देखकर राजा अत्यधिक हैरान हुआ। रात्रि होने पर वह कुटी का दरवाजा बन्द करके भीतर बैठ गया और दरवाजे के छिद्रों से बाहर देखता रहा। यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि भीलनी धनुष-बाण हाथ में लिए बाहर पहरा दे रही है। इस प्रकार लगातार तीन दिन और तीन रात राजा आश्चर्यजनक घटनायें देखता रहा। तीन दिन तक चिता में बैठकर जिस भीलनी को आँच नहीं आई वह चौथे दिन के प्रथम पहर जलती देखी गई और कुछ ही क्षणों में राख का ढेर हो गई।

राजा वहाँ से चल दिया। उसने भस्म लगाकर साधु का भेष बनाया। लोग उसका खूब मान सम्मान करने लगे। नगर सेठ के एक नौकर की भी उस पर नजर पड़ी। वह सामने आकर हाथ जोड़ कर बोला—महात्मा जी ! हमारे सेठ नगर सेठ हैं। उन्हें वृद्धावस्था में पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है, किन्तु बालक तीन दिनसे दूध नहीं पी रहा है। आप कृपया चलकर उसे ठीक कर दीजिये।

राजा ने कहा मैं चलने को तैयार हूँ।

बालक ठीक हो जायेगा, किन्तु सेठ को तुम्हें इनाममें चालीस हजार रुपये देने होंगे। सेवक बोला—महाराज तीस हजार तो हमारा सेठ देने को तैयार है। योगीरूप राजा बोला—नहीं हमें चालीस हजार रुपये देने होंगे। सेवक ने कहा—महाराज! चलकर बालक को देखिए। मैं आपको चालीस हजार रुपये ही दिलवाऊँगा।

वह महात्मा जी को सम्मानपूर्वक सेठ के घर ले गया और सारी बात सेठ को बता दी।

सेठ ने महात्मा जी का यथोचित सम्मान किया और नम्रतापूर्वक कहा—स्वामी जी! आप बालक को ठीक कर दीजिए, मैं चालीस हजार के बजाय पचास हजार रुपये आपको इनाम के तौर पर दे सकता हूँ।

महात्मा जी ने कहा—रुपये पैसों से हमें क्या लेना है। पास में तो हमें रखना नहीं है। ब्राह्मणों को भोजन कराना है तथा दान देना है। उसके लिए चालीस हजार रुपये ही काफी है। आपके सामने ही सारा पैसा ब्रह्मभोज में लगा दूँगा। अब शीघ्र ही अपने पुत्र को एकान्त कोठरी में ले चलो। बच्चे को एकान्त कमरे में पहुँचा दिया गया। महात्मा जी ने सब लोगों को कमरेसे बाहर हटाकर दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया। द्वार बन्द होते ही लड़का बोल उठा—अरे दुष्ट राजा! आज तीन दिन हो गये, तुमने मेरे खाने-पीने की ओर ध्यान नहीं दिया? राजा ने सारी घटना सुनाई और विलम्ब के लिए क्षमा माँगी। बालक ने पुनः कहा—अब शीघ्र ही दूध पिलाओ। मेरा भूख के मारे बुरा हाल हो रहा है।

महात्मा ने शीघ्रता से माता को बुलाया और कहा, बच्चे को इसकी माँ के पास ले जाओ। अब यह दूध पीयेगा।

सचमुच ही बालक माता की गोद में जाते ही दूध पीने लग गया। यह देख सब लोग आनन्द-विभोर हो उठे। अब महात्मा जी का और अधिक सम्मान होने लगा। सेठ ने बड़ी विनम्रता से कहा—महाराज! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है। इस उपकार को मैं कभी नहीं भूल सकता। आप कुछ दिन यहाँ विश्राम कीजिए और बच्चे को पूरी तरह स्वस्थ करके जाइये। हमें भी आपकी सेवा का मौका मिल जायेगा।

राजा (महात्मा) यह चाहते ही थे। अतः उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। १५ वें दिन बच्चे ने अचानक फिर दूध पीना बन्द कर दिया। माता उसे महात्माजी के पास ले आई। उन्होंने पहले की तरह बच्चे को एकान्त कोठरी में भिजवाया और पीछे-पीछे खुद जाकर सब लोगों को कमरे से बाहर निकाल कर दरवाजा बन्द कर दिया। फिर धीरे से लड़के से कहा—क्यों फिर दूध पीना बन्द कर दिया।

लड़का बोला—इस प्रकार मैं तुम्हारी प्रतिष्ठा ही बढ़ा रहा हूँ। तुम मेरे दूध पीने का प्रबन्ध कर दो। राजा ने धाय को बुला कर बच्चा माँ के पास भेज दिया और उसने तत्काल दूध पीना आरम्भ कर दिया। २६ दिन तक लड़का ठीक रहा और बराबर दूध पीता रहा। २६ वें दिन वह अचानक जोर-जोर से रोने लगा। जब वह किसी प्रकार से शान्त नहीं हुआ तो उसे राजा के पास ले जाया गया। ज्योंही राजा ने गोदी में उठाया बच्चा चुप हो गया। राजा उसे एक ओर ले गया और धीरे से पूछा—क्यों अब क्या सलाह है? लड़का बोला—राजा भोज! अब तुम यह चालीस हजार रुपये लेकर शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ। मेरी आयु पूरी होने वाली है। आज से चौथे दिन प्रातःकाल मैं मर जाऊँगा। उस समय मुझे ग्राम के श्मशान घाट में गाड़ दिया जायेगा। तब तुम आना और मुझे गड्ढे में से चुपचाप निकाल लेना। उस समय मैं तुमसे सब वृत्तान्त कहूँगा।

राजा ने बच्चा धाय को सौंप दिया। सेठ से अपने चालीस हजार रुपये लिए और अगले दिन वहीं पर यज्ञ रचाया। ब्रह्मभोज किया तथा ब्राह्मणों को दान देकर वह सारा पैसा वहीं खर्च कर दिया। जब वह जाने को तैयार हुआ तो सेठ तथा उसके परिवार वाले बार-बार आग्रह करने लगे, कि अभी कुछ दिन और यहीं रुकिये। राजा ने वहाँ अधिक रुकना ठीक नहीं समझा। अतः उन लोगों को आशीर्वाद देकर चलने लगा। सेठ तथा उसके सेवक राजा को अगले गाँव तक छोड़ने गये, तब राजा ने उन्हें आशीर्वाद दिया और घर लौटने की आज्ञा दी।

उन लोगों के चले जाने के बाद राजा ने अपना जोगी का वेष बदल कर साधारण वस्त्र धारण कर लिए और पुनः उसी गाँवमें जाकर एक कुम्हार के घर ठहर गया।

अगले दिन प्रातः काल ही कुम्हारी ने बताया कि नगर सेठ का लड़का मर गया है। सब लोग वहाँ जा रहे हैं। अतः मैं भी जाती हूँ, जल्दी लौट आऊँगी।

कुम्हारी के चले जानेके बाद राजा अपने-अपने कपड़ों की गठरी बाँध, हाथ में फावड़ा लेकर श्मशान की ओर चल दिया और वहाँ एक कोने में चुपचाप बैठ गया। कुछ समय बाद सेठ के बच्चे का शव लेकर लोग वहाँ पहुँचे और गाड़कर चले गये। राजा दूर से देखता रहा। जब सब लोग चले गये तो उसने बच्चे को गड्ढे से निकाल लिया। राजा को देखकर लड़का बोल उठा—यहाँ से कुछ दूरी पर नलकपुर नामक गाँव है, वहाँ एक भक्तिन रहती है, तुम उसके पास चले जाओ। वह तुम्हारे पिछले जन्म के बारे में सारी बात बतायेगी।

राजा ने बालक के मृत शरीर को उसी प्रकार गड्ढे में डालकर मिट्टी से ढक दिया और कनकपुरी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर वह भंगिन को ढूँढने का उपाय सोचने लगा।

इतने में ही एक भंगिन सामने से आती हुई बोली—क्यों राजाभोज! आ गये?

राजा आश्चर्य चकित बोला तुम कौन हो और मुझे कैसे जानते हो?

भंगिन बोली उस लड़की ने तुम्हें जिसके पास भेजा है वह मैं ही हूँ।

राजा ने प्रसन्न होकर कहा यदि तुम वही हो तो जिस काम के लिए मैं यहाँ हूँ वह पूरा वृत्तान्त कहो।

भंगिन खामोश रही। राजा ने फिर वही प्रश्न किया। भंगिन भरे नेत्रों से राजा को निहारती हुई गद्गद् कंठ से बोली, राजाभोज! मैं बड़ी अभागिन हूँ, कि तुम्हारा कुछ भी स्वागत नहीं कर सकती। क्योंकि मैं जाति से भंगिन हूँ। मैंने नीच जाति में क्यों जन्म लिया और पिछले जन्म में तुम क्या थे? यह तुम्हें बताती हूँ। ध्यान देकर सुनो—

पिछले जन्म में तुम एक लकड़हारे थे और मैं तुम्हारी पत्नी थी। किसान का लड़का जो २० वर्ष की आयु में चोरों के हाथों मारा गया और जिसने दुबारा एक सेठ के घर जन्म लेकर उससे तुम्हें चालीस हजार रुपये दिलवाये और जन्म के चालीसवें दिन पुनः प्राण त्याग दिये तुम्हारा पुत्र था। कालिदास की पुत्रवधू तुम्हारी पुत्रवधू थी। तुम दोनों पिता पुत्र लकड़ियाँ बेचकर हमारा भरण-पोषण करते थे। समय बड़े आनन्द से बीत रहा था। तुम बड़े दयालु और उदार प्रकृति के थे। दूसरों का दुख दूर करने के लिए बड़े से बड़ा कष्ट उठाने को सदा तैयार रहते थे।

विधि के विधान से एक बार महान दुर्भिक्ष पड़ा। तब हमें भी बड़ी कठिनता से रोटी मिल पाती थी। एक दिन हम चारों एक एक रोटी लेकर खा रहे थे। उसी समय एक यती आया। उसे भूख से व्याकुल देखकर तुम्हें दया आ गई। तुमने अपनी रोटी में से आधी रोटी उसे दे दी। उसे खाकर यती बोला मैं पाँच दिन का भूखा हूँ। अतः तुम्हारी सामर्थ्य है तो कुछ और दे दो। तुमने अपने पुत्र की रोटी में से आधी रोटी फिर उसे दे दी। उसे खाकर वह और माँगने लगा। तुमने अपनी पुत्रवधू की रोटी का भी आधा भाग उसे दे दिया। कहीं मेरी रोटी का भी आधा भाग ले न देवें इस भय से मैं अपनी रोटी लेकर दूर चली गई। यती के और माँगने पर तुमने अपनी रोटी का भी शेष भाग उसे दे दिया। यती सन्तुष्ट होकर चला गया। उसके बाद कई दिनों तक हमें भोजन नहीं मिला और हम सभी भूख से व्याकुल होकर मर गये।

# ❀ योगी अथर्वा के उपदेश ❀

[ आचार्य श्री यशोवर्धन ]

शाण्डिल्य को योगी अथर्वा ने जो योगोपदेश दिया है वह शाण्डिल्योपनिषद् में विस्तार से वर्णित है। यहाँ हम उसी शाण्डिल्य उपनिषद् से योगी अथर्वा के योगोपदेशों को सार रूप से 'सिद्धयोग' के साधक पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है यह उपदेश साधकों की उनकी योग-विषयक जानकारी के क्षेत्र को कुछ और अधिक विस्तृत करने में सहायक होगा।

शाण्डिल्य ने अथर्वा से पूछा आत्म प्राप्ति के लिए साधन रूप ऐसे अष्टांग योग का मुझे उपदेश दीजिए। अथर्वा ने कहा—हे शाण्डिल्य! यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग हैं। योग में यम दस हैं और नियम भी दस ही हैं। आसन आठ हैं। प्राणायाम तीन हैं। प्रत्याहार पांच हैं और उतनी ही धारणायें हैं ध्यान दो प्रकार का है और समाधि एक ही है।

यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार, और शौच यह दस यम हैं।

---

( पिछले पृष्ठ का शेष )

हे राजन् तुमने स्वयं भूखा रहकर भूखे साधु की प्राण-रक्षा की तथा जीवन भर परोपकार करते रहे, जिस कारण तुम राजा बने हो और हर प्रकार का सुख भोग रहे हो। अपने पिछले संस्कारों के कारण तुम आज भी उदार एवं दानी हो। तुम्हारा पुत्र जिसने अपने अन्तिम समय में साधु को आधी रोटी दान में दी, उसने अपने अगले जन्म का आधा समय सुखपूर्वक बिताया। आपकी पुत्रवधू जो अब कालिदास की पुत्रवधू है, उसने भी आधा सुख भोगा। मैंने जीवन भर पेट को ही विशेष महत्व दिया था इस कारण चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुई हूँ और सम्पूर्ण दुःखों को भोग रही हूँ।

इतना कहते-कहते भीलन की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई और वह अपने दोनों हाथों से मुँह छिपाये शीघ्रता से वहाँ से चली गई।

यह रहा राजा भोज का पूर्वजन्म तथा उसका पिछला परिवार। इस कहानी से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मनुष्य स्वयं ही अपना भाग्य-विधाता है। अतः मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि वह जीवन में शुभ कर्मों का ही संग्रह करे।

मन वचन कर्म से किसी भूत प्राणी को किसी समय क्लेश पहुँचाना हिंसा है। इसके विपरीत अहिंसा है।

मन, वचन और कर्म से सब भूत प्राणियों के हित में यथार्थ भाषण करना सत्य कहलाता है तथा मन, वचन और कर्म से दूसरे के धन के लिए निस्पृह रहना अस्तेय है।

मन, वचन और कर्म द्वारा सर्वदा सर्वत्र, मैथुन का त्याग करना ब्रह्मचर्य कहा जाता है। सर्व भूत प्राणियों पर सदा अनुग्रह रखना दया है। कोई विहित आचरण करे या कोई अविहित आचरण करे उनके प्रवृत्ति-निवृत्ति में सदा समान रहना इसे आर्जव कहते हैं।

कोई प्रिय हो या अप्रिय हो, उन सबके सत्कार या तिरस्कार को सहन करना क्षमा कहा जाता है।

अर्थ की हानि होने पर अथवा इष्ट मित्र का वियोग होने पर अथवा उनकी प्राप्ति होने पर मन की स्थिर रखना इसको धृति कहते हैं।

चौथाई पेट खाली रख कर स्निग्ध (चिकना) और मधुर आहार करना मिताहार कहा जाता है।

बाह्य और आभ्यन्तर मिलकर दो प्रकार का शौच होता है। मृत्तिका और जलसे बाह्य शौच होता है और मनको शुद्ध करना आन्तर शौच होता है, यह अध्यात्म ज्ञान से प्राप्त होता है।

निषम—

तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजा, सिद्धान्त श्रवण, लज्जा, मति और जप ये दश नियम हैं।

विधि के अनुसार कृच्छ्र चान्द्रायणादि द्वारा शरीर को क्षीण करना तप है।

जो कुछ सहज प्राप्त हो उसी में आनन्द मानना सन्तोष है।

वेद में कहे हुए धर्म और अधर्म के निर्णय में विश्वास रखना आस्तिकता है।

न्याय से उपार्जित धन और धान्य जिसको आवश्यकता हो, उसको श्रद्धापूर्वक देने का नाम दान है।

प्रसन्नतापूर्वक और यथा शक्ति विष्णु, शिव आदि देवताओं का पूजन ही ईश्वर पूजन है।

वेदान्त वाक्यों के अर्थ का विचार करना यह श्रवण है।

वेद, वचन के अनुसार अथवा लौकिक रीतिके अनुसार जो कर्म बुरे माने गये हैं उनके करने में लज्जा रखने को लज्जा कहते हैं।

वेद विहित मार्ग में श्रद्धा रखने का नाम मति है।

वेद के विरुद्ध न हो ऐसे मन्त्र का गुरु से उपदेश लेकर उसका बार-बार उच्चारण करने को जप कहते हैं। जप दो प्रकार का होता है, वाचिक और मानसिक। मन से ध्यानपूर्वक जप करते हैं उसको मानसिक जप कहते हैं।

वाचिक जप वाणी के द्वारा होता है। यह भी दो प्रकार का होता है, एक उच्च ध्वनि से और दूसरा नीचे स्वर से।

मन्त्र का उच्च ध्वनि से उच्चारण करने से यथोक्त फल होता है। धीमे स्वर से जप करने से सहस्रगुणा और मन ही मन जाप करने से कोटिगुना फल होता है।

वेदोक्त विधि निषेध का नित्य अनुष्ठान करना चाहिए। योगी अथर्वा ने शाण्डिल्य को आगे आसनों के भेद बताते हुए कहा कि यों तो आसनों के अनगिनत प्रकार हैं लेकिन, योगशास्त्र में आठ आसन मुख्य हैं, जिनके नाम हैं—स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, सिंहासन, भद्रासन, मुक्तासन और मयूरासन।

इन आसनों की परिभाषा इस प्रकार है—

१—घुटने और जांघ के बीच में पैर के तलुए रखकर बैठने से सबको सुखमोद ऐसा पद्मासन हो जाता है।

२—बाईं जांघ पर दाहिने पैर का तलुआ दाहिनी जांघ पर बायें पैर का तलुआ रखकर बैठने से पद्मासन हो जाता है।

३—बाईं जांघ पर दाहिना पैर और दाहिनी जांघ पर बांया पैर रखने से वीरासन होता है।

४—दाहिनी जांघ में बाईं एड़ी और बाईं जांघ में दाहिनी एड़ी लगाकर हाथ घुटनों पर रखते हुए हाथ की उंगलियां पसार रखने और मुख फाड़ कर दृष्टि नासिकाग्र पर रखे ऐसे सावधान बैठने को सिंहासन कहते हैं।

५—बांया पैर गुदा और लिंग के बीच में लगाकर दाहिना पैर लिंग के ऊपर लगावें और भ्रूमध्य में ध्यान लगावें इसको सिद्धासन कहते हैं।

६—एड़ियों को वृषण के नीचे सीवनी के बाजू में लगाकर और दोनों हाथों से उनको दृढ़ जमाने से सब रोगों को और विष को दूर करने वाला भद्रासन होता है।

७—सीवनी के बाईं और दाहिने पैर की एड़ी से सीवनी को दबाकर बैठना मुक्तासन कहलाता है।

८—दोनों हथेलियां जमीन पर टेक कर हाथ की कोहनियां नाभि के पास रखें और सिर तथा पैर ऊपर ऊंचे उठाकर दण्डाकार हो जाय इसे सर्व दोषों को दूर करने वाला मयूरासन कहते हैं। इस आसन के करने से सब रोग नष्ट हो जाते तथा विष भी पच जाता है।

अथर्वा ने आगे कहा जो अशक्त हों उन्हें जो आसन सुसाध्य हो वही करना चाहिए।

आसन के योगाभ्यास से शरीर गत सभी रोग नष्ट हो जाते हैं अतः प्रत्येक साधक को किसी योग्य सद्गुरु की देखरेख में आसन सिद्धि का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

लल्लेश्वरी के सिद्ध वाक्य—

# ज्ञात नहीं गन्तव्य कहाँ ?

[ श्री पीताम्बर मिश्र ]

[ कश्मीर की प्रसिद्ध सिद्ध-योगिनी, माता लल्लेश्वरी (लल्ली या लल्ल-योगेश्वरी) के सिद्ध वाक्यों में, अन्तः साधना तथा आत्म-साक्षात्कार के सुस्पष्ट चित्र देखने को मिलते हैं। लल्लेश्वरी ने कभी कोई पुस्तक नहीं लिखी। समय-समय पर निःसृत उनके हृदयोद्गार ही कश्मीर के घर-घर में गीत-रूप में प्रचलित रहे। लल्लेश्वरी का जन्म आज से प्रायः ६०० वर्ष पूर्व कश्मीर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी कतिपय सूक्तियों का काव्यानुवाद प्रस्तुत है।]

अविदित दिशा, अचिन्हित पथ है, ज्ञात नहीं गंतव्य कहाँ ?
किस प्रदेश, किस मग से आई, सब विस्मृत होगया यहाँ ॥
तदपि, अबाधित धैर्य और आशा से पूरित हैं इच्छाम।
तत्वज्ञान ग्रहण करने को, आतुर बुद्धि- विवेक ललाम ॥

देहाभिमान में मग्न, आत्मसत्ता को जान नहीं पाई।
हे गुरु ! हे परशिव ! हे प्रभु ! तुमको पहचान नहीं पाई ॥
'तू' ही 'मैं' होकर रहता है, 'मैं' 'तू' हो रहती अविराम।
हम दोनों हैं एक- एक सत्ता के 'मैं' 'तू' हैं दो नाम ॥

हुआ न पर यह बोध, आवरण से आच्छादित रहा विवेक।
इसीलिये 'तू' कौन, कौन 'मैं' उठते ऐसे प्रश्न अनेक ॥

सद्गुरुनाथ ! मुझे अपनाओ, कृपा करो हे करुणागार।
साधन भूत ज्ञान दो मुझको, दो प्रकाश का पारावार ॥
अपनी अन्तर शक्ति प्रवाहित करदो मेरे अन्तर में।
सोऽहं बन स्फुरो, गुरो ! तुम मेरे मानस-मन्दिर में ॥

बीत गया, यौवन प्रमत्त, अब जीवन की संध्या आई।
वृद्ध होगया गात, वाष्प-सी उमड़ उड़ गई तरुणाई॥
इस अनित्य में, चित्त रमे, ऐसा है कुछ भी नहीं यहाँ।
जो है नित्य शाश्वत, चिन्मय, चल! जल्दी! अब चलें वहाँ॥

जन्म-जन्म से रही हूँ ढूंढ़ते, बीत गया उफ कितना काल।
पड़ा रहा अन्तर - नयनों पर, विभ्रम का आवरण कराल॥
देखे गिरि, गह्वर, वन, मरुथल, मिले नहीं शंकर प्रियतम।
रही भटकती देख न पाई मैं अपना ही अंतरतम्॥

पलकों पार नयन - गंगा के है जो दिव्य हृदय - मन्दिर।
सदा - सर्वदा से विराजते उसमें ही तो सर्वेश्वर॥
उनसे रहित नहीं है कुछ भी अणु अणु में है उनका वास।
यत्र-तत्र-सर्वत्र वही चिन्मय सत्ता कर रही विलास॥

निष्फल गए नियम, व्रत, संयम, तीर्थाटन भी व्यर्थ हुआ।
युग-युग गाए विरुद-गान, पर फलित न कोई अर्थ हुआ॥
सश्रम किया नाम संकीर्तन, हुई न अन्तर्दृष्टि विमल।
अविरल बही अश्रु धारा, पर, हुआ न दग्ध हृदय शीतल॥

किन्तु हुई जब सिद्ध-कृपा, तो ऐसा प्रखर प्रकाश हुआ।
अपने भीतर देखो प्रियतम, सब जग चितिमय भास हुआ॥

वह साक्षी समस्त कर्मों का, हास-विलास कि वन्दन हो।
संभाषण, स्नान, गान हो, अथवा करुणा क्रन्दन हो॥
तेरे उर में ही रहता है, खोल नयन पहचान उसे।
ढूँढ रहा था यत्र-तत्र, अस्थिर मन का अज्ञान जिसे॥

करो शक्ति को नमन, कि शिव-चरणों में करो सुमन अर्पण।
अंतरात्म में रमो सतत, फिर क्रीड़ा हो अथवा वन्दन॥
सर्व देवमय वह सर्वेश्वर, उसके ही हैं नाना रूप।
कहो शक्ति, शिव अथवा सद्गुरु, तत्व एक है सतत अनूप॥

जिसकी प्राप्ति हेतु यतिजन, यह सब करते हैं तीर्थ प्रवास।
निर्जन निपट अरण्यानी में जिसे खोजते हैं सायास ॥
हृदयस्थित वह ब्रह्म, कहीं अन्यत्र नहीं है उसका द्वार।
उसका ज्ञान सहज सम्भव है, सद्गुरु चरणों से साभार ॥

जो भीतर है, उसको बाहर खोजें, होगा व्यर्थ प्रयास।
तम से यथा ज्योति की आशा, करती पावक का उपहास ॥
आत्मतीर्थ सेवन से 'लल्ली' सर्व दोष होते हैं नाश।
सूचीभेद्य तमस को हरता, ज्यों सत्वर ही प्रखर प्रकाश ॥

जग में वही समाया 'लल्ली' उसमें जगत समाया है।
जड़ में वही, वही चेतन में, वही प्राण, मन, काया है ॥
पुष्प वही है, सौरभ भी वह ही, मेघ वही, है तड़ित वही।
चन्द्र वही, चन्द्रिका वही है, सलिल वही है, सरित वही ॥

वह निर्मुक्त सर्वव्यापी है, उसे न सीमाएँ स्वीकार।
पारावार अतीत, कि उसका सीमाहीन अनन्त प्रसार।

## —० पाप रूपी वृत्रासुर का वध करिये ०—

वृत्रासुर के वध के लिए देवों में एकमात्र इन्द्र ही समर्थ है। हम आधि दैविक जगत में देखते हैं कि इन्द्र अर्थात् सूर्य ही वृत्र अर्थात् मेघ का वध किया करता है और वृष्टि द्वारा जगत् का भारी उपकार करता रहता है।

इसी प्रकार आधि भौतिक क्षेत्र में देव (विद्वान लोग) राजा (शासक) के सहयोग से ही वृत्र (पापियों) का विनाश करते हैं।

इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत में जो वृत्र अर्थात् पाप हम पर दिन-रात आक्रमण कर हमें परेशान करता रहता है उसके विनाश के लिए एकमात्र इन्द्र अर्थात् आत्मा ही समर्थ है। इन्द्रियों और मन या बुद्धि से यत्न करके भी हम पाप का विनाश नहीं कर पाते। यदि हम आत्मा को आगे ले आयें, पुरोहित कर लेवें और इन्द्रादि देवों को अपना अनुयायी बना लेवें, तो पापरूपी वृत्रासुर कभी हम पर हमला नहीं कर सकता। किन्तु इस कार्य के लिए यह आवश्यक है कि हम आत्मा को स्तुति प्रार्थनाओं द्वारा ओज से परिपूर्ण करें। जब दिव्य वाणियों द्वारा हम अपनी आत्मा में ओज का विकास कर लेंगे, तभी महाबली पाप रूपी वृत्रासुर को मारने में समर्थ हो सकेंगे।

—वेदवाणी से साभार

# योगाभ्यास

[ श्री विजयसिंह, एम० एस-सी० ]

मानव की प्रत्येक क्रिया के मूल में एकमात्र अभिव्यक्ति चिर आनन्द प्राप्ति की अभिलाषा ही है। अमानवीय कृत्यों का विश्लेषण सूक्ष्म रूप से करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सुख अर्जन का ही भाव इन विपरीत आचरणों के पीछे निहित है, क्योंकि जब हमारी इच्छायें पूरी होती हैं उस समय क्षणिक सुख का आभास होता है। इन्हीं थोड़े-थोड़े सुखों को संचित करने एवं स्थिर रखने के लिए मनुष्य प्रगटतः नाना प्रपंचों में अपने को उलझाता रहता है। क्षुद्र इच्छाओं का अन्त कहाँ है? सभी की सभी इच्छायें अब तक इस संसार में किसकी पूरी हुई हैं? अतः क्षणिक सुखों की बूँदों से आनन्द का सागर नहीं बनाया जा सकता। सुख की इतनी व्यग्र अभिलाषा चर-जीवों में क्योंकर है। इस प्रश्न का समाधान जीव के मूल स्वरूप को जानने पर हो जाता है। आत्मा का स्वरूप ही महानन्द है। आत्मा का स्वभाव ही परमसुख है। अतः आदि स्वरूपमें नित्य आनन्द का उपभोग जिसे प्रत्येक जीव ने किया है, अब संस्कारों के आवरण के कारण भ्रमित हो चला है। उसे कुछ-कुछ याद है। स्मृति पूरी तरह स्पष्ट नहीं है अन्यथा जीव अपने को तत्काल उस आनन्दमय सागर में डुबा लेता। इन्हीं कारणों (अविद्यादि) से जीव जन्म-जन्मान्तरों से भटकता हुआ—अनेकों कर्मों को करता हुआ सदैव ही सुखानुभूति चाहता है, परन्तु मिलता है उसे अविद्याजनित क्लेशों के कारण विपरीत फल दुःख। यह भटकना अनेकों जन्मों में किये गये निकृष्ट कर्मों से उत्पन्न कुसंस्कारों के कारण जारी रहता है। इन अदृश्य संस्कारों से मानव मन अवश्य ही प्रभावित होता है। यदि कुकर्मों से उत्पन्न कुसंस्कार किसी जीव के अत्यधिक हैं तो ऐसे जीवों का प्राक्तन कुसंस्कारों के कारण ही वर्तमान जन्म में भी उनके मन का विकास नहीं हुआ करता है। क्षिप्त-विक्षिप्त एवं मूढ़ावस्था के प्राणियों का वर्णन भगवान पतंजलि देव ने ऐसे ही आधारों पर अत्यन्त ही ग्राह्य एवं स्पष्ट ढंग से किया है। यहाँ मन के विकास का सीधा अर्थ मन की एकाग्रता से है। चंचल मन में शान्ति का अधिष्ठान नहीं हो पाता है। ऐसे जीवों को अभ्यास एवं वैराग्य का पूर्ण सहारा लेकर अपने प्राक्तन कुसंस्कारों के प्रभाव को नष्ट करना पड़ता है। अभ्यास

एवं वैराग्य के द्वारा कोई भी व्यक्ति समाधि अवस्था प्राप्त कर सकता है। अभ्यास तथा वैराग्य ही चंचल मन को शान्त करने का बढ़िया साधन है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण जी से गीता में अर्जुन के यह कहने पर कि हे मधुसूदन, मन की चंचलता के कारण मुझे आपका बताया हुआ साम्यबुद्धि से प्राप्त होने वाला यह योग, स्थिर रहने वाला नहीं प्रतीत होता है। और इतना ही नहीं, मन का निग्रह करना वायु निग्रह के समान ही अत्यधिक कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि यह मन चंचल हठीला, बलवान तथा दृढ़ है। इसके उत्तर में मुक्तों के गुरु परम योगिराज श्रीकृष्ण जी ने कहा था:—

**असंशयं महाबाहो**
**मनो दुर्निग्रहं चलम्।**
**अभ्यासेन तु कौन्तेय**
**वैराग्येण च गृह्यते॥**

हे महाबाहो! मन निःसन्देह चंचल और दुर्निग्रह है और कठिनता से वश में आने वाला है। किन्तु हे अर्जुन, इसे अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा वश में किया जा सकता है।

पवित्र संस्कारों की अधिकता में मानव सत्व धारण कर एकाग्रता की ओर अग्रसर होता है परन्तु पूर्णरूपेण चित्त तो निरन्तर अभ्यास से ही एकाग्र होकर निरोधावस्था को प्राप्त होता है। जो प्रयत्न, पूर्ण उत्साह तथा सामर्थ्य से चित्त को स्थिर करने के लिए किया जाता है उसे अभ्यास कहते हैं।

**स तु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्कारा-सेवितो दृढ़ भूमिः।**

अभ्यास तमोगुणी एवं रजोगुणी वृत्तियों को पूर्णतया दबाकर सत्व वृत्तियों को उभारने का कार्य करता है। इससे मन निरन्तर शक्ति युक्त हुआ अकुल एवं अज्ञात परे होने वाले रहस्यात्मक तथ्यों का ज्ञान करने लगता है। यही अनुभूति है। अभ्यास विषयों की ओर प्रवाहित होने वाली इन्द्रियों के इस व्यापार पर भी बाधा प्रातबन्धक बनजाता है। अन्यथा अभ्यास से रहित साधक "बलवान प्रकारेण" अवलम्ब मन की शक्तियों को इन्द्रियों के बाह्य व्यापार में नष्ट करने लग जाता है। अतः मन को शक्तियुक्त बनाने के लिए उचित संस्कार ही सर्वथा योग्य होते हैं। संस्कार पूर्व जन्मों के कर्मों के फल के अथवा वर्तमान जन्म शिक्षा दीक्षा, परम्पराओं तथा परिस्थियों के अधीन होते हैं। इसलिए शास्त्र सम्मत बात यह है कि पूर्व जन्मों के विषय भोग के लिए, किये गये कर्मों के संस्कारों को रहित करने के लिए एक मात्र योग का अभ्यास ही समुचित साधन है। विवेक, अभ्यास के द्वारा ही मन जाग्रत किया जा सकता है जिससे मनुष्य अभ्यास का सम्बल लेकर के तीक्ष्ण विवेक द्वारा प्राक्तन संस्कार की बेड़ियों को धैर्य पूर्वक काट कर तथा नूतन

संस्कारों की आवृत्ति होकर इस जीवन के पार का दर्शन प्राप्त कर लेता है।

चित्त-चाञ्चल्य अभ्यास से स्थिर किया जा सकता है। इस बात की पुष्टि योग वाशिष्ठ में भी की गई है:—

दुःसाध्याः सिद्धिमायान्ति
रिपवो यान्ति मित्रताम् ।
विषाण्यमृततां यान्ति
सतताभ्यासयोगतः ॥
दृढाभ्यासाभिधानेन
यत्ननाम्ना स्वकर्मणा ।
निजपेदनजेनैव
सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥

(योग वा० ६/२ ३३-४४/२७)

अर्थात् अभ्यास का ऐसा महत्त्व है कि बार-बार यत्न करते रहने से असम्भव भी सम्भव हो जाता है, शत्रु भी मित्र हो जाते हैं तथा विष भी अमृत हो जाता है। यत्न नाम वाले अपने ही पुरुषार्थ से, जिसका नाम दृढ़ अभ्यास है मनुष्य को संसार में सफलता प्राप्त होती है अन्य किसी साधन से नहीं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अभ्यास से सब कुछ सुलभ है किन्तु फिर भी अनन्त जन्मों की भोग वृत्तियों के बलवान, चित्त के एकाग्रता विरोधी, संस्कारों से इस जन्म का थोड़े कालका किया गया योगाभ्यास कैसे छुटकारा दिला सकता है? असावधानी से किया गया अभ्यास संस्कारों को ठीक-ठीक निरोध, नहीं कर सकता है। अतः अभ्यास में जरा सी भी असावधानी नहीं होनी चाहिए। हर व्यक्ति को शीघ्र समाधि लाभ नहीं होता इससे निराश होकर अभ्यास से मुख नहीं मोड़ना चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि—

तं विद्याद् दुःखसंयोग-
वियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो
योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

( गीता ६/२३ )

उस स्थिति को जिसमें दुःख संयोग का वियोग होता है, योग की स्थिति कहते हैं। इस योग का आचरण निश्चयपूर्वक बिना मन को उकताये हुए करना चाहिए। इसलिए योग में अभ्यास को अत्यधिक प्रबल बनाने के लिए धैर्य के साथ बहुत समय तक नियमित रूप में सात्विक श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के साथ निरन्तर व्यवधान रहित अभ्यास करते रहना चाहिए। ऐसा भगवान पतंजलि देव जी का आदेश समाधि-पाद योग-दर्शन में किया गया है।

योग वाशिष्ठ के अन्तर्गत भगवान वशिष्ठ जी ने अभ्यास क्या है? इसकी महत्ता कैसी है! विशिष्ट रूप से बतलाया है।

पौनः पुन्येन करण-
मभ्यास इति कथ्यते ।
पुरुषार्थः स एवेह
तेनास्ति न विना गतिः ।।

दृढाभ्यासाभिधानेन
यत्नानाम्ना स्वकर्मणा ।
निजसंवेदनजेनेह सिद्धि-
र्भवति नान्यथा ।।

अभ्यासभास्वति
तपत्यवनौ वने च ।
वीरस्य सिद्धति न यन्न
तदस्ति किञ्चित् ।।

अभ्यासतो भुवि-
भयान्यभयीभवन्ति ।
सर्वासु पर्वतगुहा-
स्वपि निर्जनासु ।।

अर्थात् किसी कार्य का बारम्बार करना ही अभ्यास कहा जाता है। दृढ़ अभ्यास शब्द से कहा जाने वाला प्रयत्न नामक जो अपना कर्म है उसीसे सिद्धि मिलती है, दूसरे से नहीं। अभ्यास करने की प्रवृत्ति सत् कर्मों से उत्पन्न होती है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये हुए वीर पुरुषों के लिए अभ्यास रूपी सूर्य के तपते रहने पर भूमि में, जल में या आकाश में ऐसी कोई अभिलषित वस्तु नहीं है जो उसे प्राप्त न हो जाय। भू-मण्डल पर तथा निर्जन पर्वत की गुफाओं में जितने भय के कारण हैं (सिंह, सर्प इत्यादि) वे सब अभ्यासरत पुरुष के लिए अभय हेतु बन जाते हैं। महर्षि रमण के बारे में कहा जाता है कि जब वे अरुणाचल पर्वत पर एक गुफा में योगाभ्यास करते थे तो जंगल से दो भयानक व्याघ्र गुफा-द्वार पर तब तक बैठे पहरा दिया करते थे जब तक महर्षि समाधि से उठ न जायँ। इस प्रकार के अनेक वर्णन मिलते हैं।

केवल धारणामात्र के अभ्यास द्वारा साधक को अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। धारणा के अभ्यास से पक्षियों के सदृश आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसा योग-वाशिष्ठ के निम्न श्लोक से प्रमाणित है :—

आधिभौतिक देहोऽसौ
धारणाभ्यासभावनात् ।
विहङ्गवत् समभ्येति
पद्याऽभ्यासविजृम्भितम् ।।

योग-वाशिष्ठ में विद्याधरी की एक कथा वर्णित है। उसने योगाभ्यास के बल से सिद्ध-दर्शन की शक्ति प्राप्त करली थी तथा परम सिद्ध वशिष्ठ जी के सम्मुख उपस्थित होकर आत्मज्ञान का उपदेश चाहते हुए भगवान वशिष्ठ जी से कहती है कि :—

अर्धैर्पिता यथा,
व्योम्नि धारणायामया ।

अभ्यस्ता धारणा भूयः,
सिद्धसंग फल प्रदा ॥

अर्थात् इस प्रकार धारणा के अभ्यास से मैंने आकाश में गमन करने की शक्ति प्राप्त की, फिर मैंने सिद्धों के साथ सम्वाद-लाभ देने वाली धारणा का अभ्यास किया, इसीलिए इस समय मैं इन सिद्धों के एकान्त स्थान में आकर आपके साथ सम्वाद कर रही हूँ।

जो व्यक्ति भी आत्मानन्द के लिए अभ्यास नहीं करते हैं, वे अनित्य में अर्थात् देह के अहम्भाव रूप अनर्थ में ही अभ्यासरत रहते हैं और इस देहाभ्यास से अनेकों कष्टों को प्राप्त करता है। प्राक्तन संस्कारों को भस्म करने हेतु स्वाध्याय, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि योगाभ्यासों का अभ्यास ही मात्र सहारा है। धर्म ग्रन्थों में भाग्य को बदल देने वाले महापुरुषों की भी जीवन गाथायें मिलती हैं। महापुरुषों में मुनि मारकण्डेय जी की कथा अभ्यास का ज्वलन्त एवं प्रेरणाप्रद उदाहरण है। स्वाध्याय के दृढ़ अभ्यास से सर्वाधिक मन सिमिटने लगता है, जिससे नूतन कुसंस्कारों की उत्पत्ति बन्द हो जाती है। ज्योंही मन अन्तःमुखी हुआ कि एकाग्रित शक्ति आगे बढ़कर संचित कुसंस्कारों का भी दाह-संस्कार कर देती है, अब निर्मल मन निरोधावस्था को प्राप्त कर समाधि प्रवेश का सुख प्राप्त करने लगता है।

लोग योगाभ्यास को दुष्कर कार्य समझ कर प्रारम्भ करने से ही घबराते हैं। यह सत्य है कि सभी को समान रूप से योग में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, जिस प्रकार अर्थोपार्जन सभी समान रूप से नहीं कर पाते हैं, परन्तु अर्थोपार्जन के लिए तो सभी लोग सदैव प्रयत्नशील रहते ही हैं। अतः हमें भी योगाभ्यास, कामना रहित होकर करते रहना चाहिए। अर्थ, धर्म और काम इन तीनों की प्राप्ति में जिस प्रकार उत्तरोत्तर आनन्द की प्राप्ति होती है उसी प्रकार मोक्ष जो अन्तिम पुरुषार्थ है, इसकी भी प्राप्ति में मानव सर्वाधिक अनन्त आनन्द प्राप्त करता है। अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि योगाभ्यास मानव को मानवता, अमानवता के भेद को भी छोड़कर उसे, उसके परमलक्ष्य पर पहुँचा देता है। योगाभ्यास योग की किसी साधना के अभ्यास से समझना चाहिए। चाहे कोई तन्त्र योग, भक्ति योग, नाद योग, हठ योग, राज योग किसी की भी साधना करता हो। योगाभ्यास सम्यक् रीति से किया जाय, इस तथ्य के पीछे एक अविस्मरणीय मूल बात यह है कि साधक को किसी सिद्धगुरु का संरक्षण अवश्य प्राप्त हो।

# शक्ति साधना में मां नाम की महिमा

[ श्री जी० एन० व्यास एडवोकेट, इन्दौर ]

मुझे ईश्वर एवं गुरु कृपा से अनेकों शास्त्रों के अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ तथा और भी बहुत कुछ देखने का सुयोग मिला है तथापि जो कुछ देखा है, उसमें सर्व साधारण के लिए कल्याण प्रद दो बातें मिली है। इनमें प्रथम का आश्रय लेने पर द्वितीय बात अपने आप आविर्भूत हो जाती है।

'मां' यह अमृत वाणी ही वह प्रथम बात है न जाने कितना अमृत सिंचन करके, एकान्त में बैठकर ऋषियों ने इस 'मां' शब्द का सृजन किया है।

मां-मां-मां नाम जितना ही बोला जाय उतना ही मानो प्राणपूर्ण हो जाता है। 'मां' नाम के उच्चारण करने के साथ ही मन कैसा हो जाता है? मानव को, पशुको, अपितु प्रत्येक प्राणीमात्र की चंचलता शान्त करके लिए दूर हो जाती है। तत्पश्चात शिशु के कण्ठ में जन्म से ही 'मां' नाम आविर्भूत होता है। अनबोले बालक, बालिका के मुख से सर्व प्रथम 'मां' का उच्चारण होता है और किसी शब्द का नहीं। शिशु मां-मां रोता है शिशु मां-मां हँसता है। शिशु का एकमात्र सम्बल होता है 'मां' नाम। मां बोलकर वह मां को पुकारता है। मां नाम मां को मिला देता है। शिशु पुकारे तो मां-मां रोवे भी तो मां-मां। जो मां का नाम अवलम्बन लेकर कालक्षेप करेगा उसको फिर कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। मां नाम ही उसको मां के पास पहुँचा देगा। अरे भाई! मां, मां बोलने से साध नहीं पूरी होती अपितु जितना ही बोलो उतना ही और बोलने की इच्छा होती है। काली, काली, दुर्गा, जगदम्बी, अन्नपूर्णा, वाणी, कमला, कुण्डलिनी आदि मां के ही पृथक पृथक रूप हैं, भिन्न भिन्न नाम हैं। काली कहकर पुकारने पर उसके साथ ही जितनी देवियां हैं, उन सब की कृपा होगी। मां, मां, मां, नाम लेने से क्रमशः आनन्द का ज्वार आ जाता है। मां, नाम बोलते बोलते चित्त शुद्ध हो जाता है। अत्यन्त नीच मनुष्य से लेकर वेदज्ञ ब्राह्मण पर्यन्त तथा महामूर्ख से लेकर महा महोपाध्याय पर्यन्त प्रत्येक प्राणी समान रूप से मां नामका उच्चारण करके आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होता है। कोई भी प्राणी उससे वंचित नहीं होता।

माँ नाम के समान और कोई नाम नहीं है। माँ नाम के सब अधिकारी हैं। माँ-माँ पुकारते, माँ-माँ कहकर रोने मात्र से सब प्राणी मात्र के हृदय की ज्वाला शान्त हो सकती है। विचार कीजिये ऐसा अनुपम, ऐसा शक्तिशाली, ऐसा परमानन्द दायक 'माँ' किसका नाम है।

राम-माँ-लोक माता का नाम है। अमर कोश स्वर्ग के ७ वें २ श्लोक के बीच का प्रसिद्ध अंश में लिखा है—

इन्दिरा लोक माता मा
क्षीरोदतनया रमा॥

भावार्थ—इन्दिरा, लोकमाता 'माँ' क्षीरोदतनया॥

अर्थात लक्ष्मी और रमा ये माँ लक्ष्मी के नाम हैं।

एकाक्षर कोश में कहा गया है—

**माँ च लक्ष्मीः प्रकीर्तिता,**
**माच मातरि मानेच।**

जगन्माता लक्ष्मी का यह माँ नाम गर्भ-धारिणी माता के नाम के सदृश सब प्राणी को आनन्द प्रदान करता है। मैं यह नहीं समझता कि, विश्व में कोई ऐसा भी प्राणी होगा जिसका प्राण माँ नाम सुनकर आनन्द से नृत्य न करता हो। माँ नाम केवल पुत्र के लिए ही हो ऐसी बात नहीं। स्त्री पुरुष सभी माँ नाम के अधिकारी हैं। जगन्माता सब में माँ नाम के अन्तस्तल से आविर्भूत होती है। जो इस माँ का नाम को ग्रहण कर लेता है, उसको इस त्रिविध पथ के देश में पथभ्रष्ट नहीं होना पड़ता। साधक सहसा माँ-माँ करते-करते मूल केन्द्र में पहुँच जाता है।

'माँ' नाम अपने भक्त को अनाम-नामी, अरूप रूपी के पास पहुँचा देता है। जीवनदी उस अमृत सागर में मिलकर पूर्णरूप से एकी-भूत हो जाता है। जिस प्रकार जब नदी समुद्र के जल में मिलती है तब उसको जैसे समुद्र से पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार माँ नाम साधक को सच्चिदानन्द घन परमपुरुष के पास निराधार चिरकाल के लिए निमज्जित कर देता है। उसका फिर विच्छेद नहीं होता।

ऐसी ही महिमा सीता, राधा, गौरी एवं राम, कृष्ण, शिव आदि नामों की भी है। साधक का अपने इष्टदेव को 'त्वमेव माता' शब्दों से सम्बोधित करना अपने इष्ट के प्रति उसके अगाध स्नेह का परिचायक है। शास्त्रों के अनुसार भगवान में अनन्त माताओं की सम्मिलित करुणा एवं वात्सल्य विद्यमान है। स्वयं आचार्य श्री शङ्कर प्रबोध सुधाकर में कहते हैं—

माया हस्तेऽर्पयित्वा भरण,
कृतिकृते मोहमूलोद्भवं मां ।
मातः कृष्णाभिधाने चिरसमय,
मुदासीन भावं गतासि ॥
कारुण्यैकाधिवासे सकृदपि-
वदनं नेक्षसे त्वं मदीयं ।
सर्वज्ञे स न कर्तुं प्रभवसि,
भवत किंतु मूलस्य शान्तीम् ॥

भावार्थ—आचार्य कहते हैं—मेरी कृष्ण नाम वाली माँ !

मोहरूपी मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुए मुझ बच्चे को, मुँह न देखने के कारण, पालन-पोषण के लिए मायारूपी दासी के हाथ में सौंपकर तुम चिरकाल के लिए उदासीन हो गई हो और मेरी उपेक्षा कर रही हो। यद्यपि तुम समस्त करुणा का एकमात्र भण्डार हो, फिर भी मेरा मुँह एक बार भी नहीं देखती। तुम तो सर्वज्ञ—समस्त ज्ञानों का भी भण्डार हो, फिर क्या तुम इस मोह मूल की शान्ति करना नहीं जानती? नहीं कर सकती? और माया के चंगुल से छुड़ाकर अपनी गोद में नहीं बिठा सकती ?

मातृभूत बालक स्तोत्र में जो भगवान शिव को माता मानकर उनकी स्तुति की गई है। शक्ति और शक्तिमान में अभेद है। अतः परमात्मा के राम, कृष्ण, शिव, माँ किसी भी नाम का श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आर्तभाव से जप करने पर संसार-समुद्र को तैर कर पार नहीं करना पड़ता, कारण कि—

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं ।

(मानस १/२४/२)

इस नाम मन्त्र में हमारा—सर्व साधारण स्त्री, पुरुष सभी का अधिकार है। गाय के बछड़े पुकारते हैं—माँ-मा, बकरी पुकारती है—मा, हरिण पुकारता है—मा !

जगत में मनुष्य के लिए भगवत्प्राप्ति के मार्ग में अनेक प्रकार के विघ्न हैं। उनमें कामिनी-कांचन सर्व प्रमुख हैं। इन दोनों में भी कामिनी प्रमुख है। कामिनी के कटाक्ष से मुग्ध न हो, ऐसा मनुष्य संसारमें विरला ही है, यह कहने में अत्युक्ति नहीं दिखाई देती और कामरूपी शत्रु के ताप से साधु-असाधु सभी अशान्त हो जाते हैं। माँ का नाम ही काम-रूपी शत्रु को परास्त करने का महान् पाशुपत अस्त्र है। कामरूपी शत्रु के अत्याचार से व्याकुल होकर शान्ति की कामना से साधक यदि माँ-माँ पुकारता है, अहर्निश 'माँ' नाम का जप करता है तो इससे वह कामरूपी शत्रु को जीतने में शीघ्र समर्थ हो जाता है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं। काम ही या क्रोध अथवा लोभ सभी प्रबल शत्रुओं के दमन के लिये उच्च स्वर से माँ-माँ-माँ पुकारना सर्वोत्तम उपाय है। जब तक शत्रु पूर्णतया शान्त नहीं

हो जाते तब तक माँ नाम का त्याग न करें। इतना ध्यान रखो कि माँ नाम का स्मरण चल रहा है या नहीं ? कितने ही कामी पुरुष 'माँ' नाम का स्मरण करके काम को पराजित कर संसार सागर से पार हो गये हैं। माँ अद्वितीय नाम है –

जय माँ जय माँ जय माँ जय माँ।
जय माँ जय माँ जय माँ जय माँ ॥

भाई ! माँ नाम मानो तृप्ति, आनन्द और प्रेम से पूर्ण है। माँ-माँ-माँ पुकारने पर जहाँ जो कोई होगा, उत्तर पायेगा। माँ-माँ कहकर पुकारने पर भीतर से इतना स्पष्ट उत्तर प्राप्त होता है कि शरीर पुलकित हो उठता है, प्राण आनन्द से भर जाते हैं और मन आनन्द के ताल पर नृत्य करने लगता है। इसी कारण मेरा समस्त प्राणीमात्र से नम्र निवेदन है कि माँ-माँ-माँ पुकारो। इससे पापी-तापी, दीन-दुखी सभी तर जाते हैं। रोगी, शोक संतप्त और असमर्थ भी तर जाते हैं और सबके लिये घृणास्पद पतित—सबकी घृणा करने पर भी माँ कभी घृणा नहीं करती। वह अपने बच्चे को, चाहे वह कैसा भी सूना हो, लंगड़ा हो, पापी हो, मूर्ख हो, महा रोगी हो, कोढ़ी हो, कुरूप से कुरूप हो हृदय से लगा लेती है। माता का हृदय कितना निरापद होता है ? शान्ति, आनन्द और भूमासुख के द्वारा माँ का हृदय निर्मित हुआ है। माँ का आश्रय लेकर बिल्कुल निश्चिन्त हो जाओ। चुपके से माँ के कान में बोलो 'माँ-माँ-माँ' तब तुम्हारा कोई त्रास न रहेगा। माँ के वक्ष-स्थल पर सो जाओ, समस्त पापों का बोझ या अवसान हो जायेगा, सबके सब शान्त हो जायेंगे। इस माँ नाम का अवलम्बन लेकर जीव कृतार्थ हो सकता है। इसे स्थिर सिद्धान्त बनालो। मेरे भूलने पर भी माँ मुझे नहीं भूलती, माँ मुझको दिन-रात पुकारता है। यह माँ ही कुल कुण्डलिनी शक्ति है, माँ ही ओंकार है, माँ ही आत्मा है, माँ ही नाद है—माँ-माँ।

सर्व स्वरूपे सर्वेशे सर्वे,
शक्ति समन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि,
दुर्गे नमोऽस्तुते॥

(श्री दुर्गा सप्तशती ११/२४)

माँ से भरे, माँ द्वारा निर्मित इस संसार में जो माँ नाम को सार बना सकता है। वह हँसते-हँसते भवसागर को पार कर आनन्द के राज्य में, एक के राज्य में, भूमा के राज्य में, पंत के राज्य में पहुँच जाता है।

माँ नाम साधन और साधना को लिये हुए है।

माँ नाम अमृत है, माँ नाम पतित, दीन, पापी, तापी, मतिहीन सभी का एकमात्र सम्बल है यह अत्यन्त सत्य तथ्य है। माँ के

नाम के लाभ में सबका अधिकार है। बाल, वृद्ध, युवक-युवती, पण्डित-मूर्ख, कोल-भील सभी इसके अधिकारी हैं। अनायास जिस किसी स्थान में, जिस किसी भी अवस्था में शुचि हो या अशुचि, अनायास ही सभी माँ-माँ पुकार सकते हैं। कोई किसी भी प्रकार की बाधा नहीं। कैसा सुन्दर, कितना अनुपम रस-माधुर्य-सागर जो इन जीवों को प्राप्त है। कितना मधुर, कितना आनन्ददायक है इस माँ नाम का आस्वादन। अकेले न करो। अकेले ही माँ नाम से आनन्द प्राप्त न करो। अकेले ही माँ नाम न लेते रहो, इसे सबको दे दो। समस्त संसार, समस्त जीवों को 'माँ' नाम का महामन्त्र प्रदान कर दो। सबके दुःख, रोग, शोक, संताप, यन्त्रणा को माँ नाम से दूर कर डालो।

सभी गद्गद् कण्ठ से शिशु के समान बोलना सीखो "माँ-माँ-माँ।"

अधिक क्या निवेदन करूँ। इस संसार का प्रत्येक प्राणी माँ नाम के भीतर अपना सर्वस्व प्राप्त कर लेता है। माँ नाम के भीतर अपने खोये हुए, अपने भूले हुए 'मैं' का पता भी लगा सकता है। अल्पज्ञ हो, पापी ही क्यों न हो, तथापि मैंने 'माँ' नाम से नवजीवन प्राप्त किया है। अब केवल माँ-माँ-माँ ही बोलने की इच्छा हो रही है और कल्याण-दायिनी माँ-माँ-माँ पुकारने की अभिलाषा हो रही है।

## —० सन्त कबीर की वाणी ०—

एक कहूँ तो है नहीं, दोय कहूँ तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि॥
आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद॥
ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान॥
कागद लिखै सो कागदी, की व्योहारी जीव।
आतम-दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव॥
लिखा पढ़ी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी पड़ी बरात॥

समाचार-सार—

# भारतीय संसद में योग चर्चा

यह हर्ष और सन्तोष का विषय है कि देश में योग की शिक्षा का फैलाव व्यावहारिक रूप में करने के लिये केन्द्रीय प्रशासन का ध्यान आकर्षित हुआ है। भारतीय स्वास्थ्य मन्त्री डा० श्री कर्णसिंहजी का संसद के गत सत्रमें दिया गया बयान हमारे कथन की पुष्टि करता है। स्वास्थ्य मन्त्री श्री कर्णसिंह जी ने एक संसद सदस्य के प्रश्न तथा इसी सम्बन्ध में किये गये कुछ पूरक प्रश्नों के उत्तर में बताया कि आने वाले दो वर्षों में ही शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रम में योग शिक्षा का समावेश कर दिया जायेगा। राज्यों को इस सम्बन्ध में यथोचित आदेश भेज दिये गये हैं।

स्वास्थ्य मन्त्री श्री चिरंजीत झा के प्रश्न के उत्तर में बोल रहे थे। श्रीमती लक्ष्मी कान्तम्मा के पूरक प्रश्न के उत्तर में आपने कहा कि योग-शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाने वाली समिति में देश के प्रमुख योगियों और वैज्ञानिकों का सहयोग व परामर्श भी लिया जायगा। यह भी आपने बताया कि संसार में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ योग के अनुसार अन्तर-चेतना की शक्ति का पता लगाने के लिए शोधकार्य किया जा रहा है। कुण्डलिनी शक्ति के शोध के लिए एक शोध-संस्थान की संस्थापना भी की जा चुकी है, किन्तु इसके लिए २५ लाख रुपये का जो प्रावधान किया गया था उसके सुलभ न हो सकने के कारण इस संस्थान का कार्य आगे नहीं बढ़ सका है। श्री कर्णसिंह जी ने यह भी बताया कि वे विश्व स्वास्थ्य संगठन से भी इस दिशा में सहयोग प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।

एक सदस्य ने पूछा कि क्या योगकी शिक्षा स्त्री-पुरुष दोनोंको समान रूपसे लाभदायक रहेगी। स्वास्थ्य मन्त्री ने बताया कि निस्सन्देह यह समान रूप से दोनों के लिए ही उपयोगी है। नारी और पुरुष की शारीरिक रचना का अन्तर कोई रुकावट योग शिक्षा ग्रहण करने में पैदा नहीं करता। कुण्डलिनी एक प्रकार से शक्ति का प्रतीक है अतः नारियों में यह शक्ति अधिक सुगमता से विकसित हो सकती है। हमारे देश में जहाँ पुरुष योगियों की संख्या अधिक है वहाँ नारी योगिनियाँ भी कम नहीं हैं।

अन्त में डा० कर्णसिंह जी ने संसद सदस्यों को बताया कि यौगिक पाठ्यक्रम में योग के सभी अङ्गों की शिक्षा का समावेश रहेगा।

स्वास्थ्य मन्त्री योग-प्रचार की दिशा में जो क्रियात्मक कदम उठाते जा रहे हैं उसकी सराहना की जानी चाहिये। हम उनके इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों के लिए उन्हें अपना साधुवाद अर्पित करते हैं।

सं०— सम्पादक

Siddhayoga                                                    Regd. No. L. Ag. 008

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

समत्वं योग उच्यते

गीता २।४८

इसमें समत्वं का अर्थ विशेष रीति से ध्यान में धारण करना चाहिये। मनुष्य का मन सदा विषम रहता है। स्वकीय और परकीय भाव की विषमता, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय, ऊँच-नीच, सिद्धि-असिद्धि आदि अनेक प्रकार की विषमता इस जगत में है। इस विषमता का परिणाम मन पर न हो, और किसी भी अवस्था में मनकी सम वृत्ति न बदले, इसका नाम योग साधन, योगाभ्यास किंवा अभ्यास है यही, समत्व का अभ्यास है। चित्त वृत्ति का निरोध करके यही समत्व प्राप्त करना चाहिये। जिसका मन इस प्रकार के समभाव से सदा युक्त होता है और विपरीत परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसमें थोड़ी भी चंचलता उत्पन्न नहीं होती, उसका योग सिद्ध हुआ ऐसा मान सकते हैं।

जिसने समत्व योग का अभ्यास उत्तम रीति से किया है और जिसको समत्व की सिद्धि हो चुकी है उसका मन किसी भी अवस्था में चंचल नहीं होता कठिन से कठिन प्रसंग में भी उसकी सहजानंद वृत्ति में न्यूनता नहीं आती। जिसको यह स्थिति पूर्णतया प्राप्त हुई है उसको ही योगी कहा जा सकता है।

—स्व॰ श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

मुद्रक — [illegible] आगरा-१